राजस्थान संस्करण

गौतम नन्द

[ऐतिहासिक नाटक]

रचयिता

जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द

स्व० डॉ० भगवत्सहायजी

की

स्मृति में

पात्रसूची

पुरुष

नन्द	शुद्धोदन के पुत्र, कपिलवस्तु के राजकुमार।
शुद्धोधन	कपिलवस्तु के राजा।
देवदत्त	नन्द के मित्र।
कुम्भक	शुद्धोदन के एक पुरोहित।
आनन्द	गौतम बुद्ध के शिष्य, भिक्षु।

स्त्री

सुन्दरिका	नन्द की पत्नी।
प्रजावती	नन्द की माता।
माधविका	सुन्दरिका की सखी।
कुण्डेश्वरी	कुम्भक की पत्नी।

छठे संस्करण के प्रकाशन पर

आज अपने इस 'गौतम-नन्द' नाटक के इस छठे संस्करण के प्रकाशन पर मैं पाठकों तथा समालोचकों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, क्योंकि, यह उन्हींकी उदार कृपा का फल है।

अब मुझे आशा होने लगी है कि, स्वतंत्रता के पहले के युग में मेरे 'प्रतापप्रतिज्ञा' नाटक ने पाठकों की जिस प्रकार सेवा की एवं लोकप्रियता प्राप्त की और जिस प्रकार वह आज भी लोकप्रिय है, उसी प्रकार स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद के युग में यह 'गौतम नन्द' नाटक भी पाठकों की सेवा करके उचित लोकप्रियता प्राप्त कर सकेगा।

उक्त दोनों नाटकों में मैंने उक्त दोनों युगों की आवश्यकताओं की प्रतिध्वनित करने का विनम्र प्रयास किया है।

इस संस्करण के प्रकाशन के पूर्व मैंने इस नाटक पर सावधानी से दृष्टि डालने का प्रयत्न किया। मुझे प्रसन्नता है कि आठ वर्ष बाद भी मुझे इसमें कोई उल्लेखनीय परिवर्तन करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। अतः, मैं विश्वास करना चाहता हूँ कि सहृदय पाठकों के अनुग्रह के फलस्वरूप काल के अगले प्रवाह में भी संभवतः यह नाटक धूमिल न होगा।

यदि पाठकों; समालोचकों तथा सांस्कृतिक विकास में दिलचस्पी रखनेवाले सज्जनों की इसी प्रकार सुस्थिर कृपा बनी रही, तो उससे प्रोत्साहित होकर मैं और भी कुछ नाटक लिखने का प्रयत्न कर सकूँगा।

ग्वालियर, १।६।६०] —जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द

प्रथम संस्करण की भूमिका

भारत के कुछ प्राचीन साहित्यमनीषियों ने 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' कहकर दृश्य काव्य के उत्कृष्ट रूप नाटक की महत्ता का उद्‌घोष किया है। नाटक का प्रमुख अभिव्यक्तिवाहन गद्य होता है और 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' कहकर गद्य को कवि की कसौटी घोषित करनेवाले साहित्यरसिकों का भी प्राचीन भारत में अभाव नहीं रहा। आधुनिक साहित्यमर्मज्ञ भी साहित्यजगत् में नाटक का एक विशेष स्थान स्वीकार करने में संकोच नहीं करते। जनरुचि भी साहित्य के सुरम्य अंग नाटक की ओर काफ़ी आकृष्ट हो सकती और दृश्य काव्य के इस मनोरम स्वरूप को पर्याप्त प्रोत्साहन दे सकती है। जनरुचि के आधार की आशा पर निर्भर रहनेवाले अधिकतर प्रकाशक भी साहित्य के इस अंग का स्वभावतः अपेक्षाकृत अधिक उत्साह के साथ स्वागत करते हैं। आधुनिक शिक्षासंस्थाएँ भी नाटकों के अध्ययन-अध्यापन को विशेष प्रोत्साहन देती हैं। इन सबसे अधिक महत्व की बात यह है कि मनोरंजन और आनन्द-प्राप्ति के सम्बन्ध में जनता में पाई जानेवाली प्रत्यक्षीकरण एवं स्वावलम्बन की स्वाभाविक प्रवृत्ति नाटक को अपने लिए सबसे अधिक अनुकूल पा सकती है। देश के प्रत्येक स्थान के निवासियों में यह आकांक्षा होना स्वाभाविक ही है कि वे अपने नगर, उपनगर या ग्राम में नाटकों के अभिनय देखें और यथासंभव स्थानीय दर्शकों ही में से या उन्हीं-जैसे जानेजाते मनुष्यों ही में से कुछ लोग उनका अभिनय भी करें। अपने ही जैसे मनुष्यों या अपने ही साथियों या पड़ोसियों को अभिनय करते देखकर स्थानीय दर्शक को जो आनन्द मिल सकता है, वह अनिर्वचनीय है। यह निकटता, प्रत्यक्ष प्रतीति और अपनापन उन्हें सम्भवतः सिनेमाफ़िल्मों को देखने में प्राप्त नहीं हो सकता। और फिर अभी अनेक वर्षों तक न तो फ़िल्मों का हर नगर, उपनगर और ग्राम में पहुंच सकना संभव है और न वे अभी अधिकतर भारतीय शील और संस्कृति के अनुकूल तथा सुरुचिपूर्ण ही होती हैं।

नाटकों के लिए अनुकूल यह विशेष स्थिति न केवल सुरुचिपूर्ण नाटकों के लेखकों ही के लिए प्रेरणाप्रद है, बल्कि, जनता के सांस्कृतिक विकास में

दिलचस्पी रखनेवाले कलाप्रेमी लोकसेवकों के लिए भी उद्बोधक है। इस विशेष स्थिति का पूरा उपयोग किया जाना आवश्यक है। यह अत्यन्त आवश्यक है कि स्वतन्त्र भारत के प्रत्येक ग्राम, नगर और उपनगर में संस्कृतिप्रेमी नागरिकों और ग्रामीणों की सुगठित नाटकसमितियाँ स्थापित हों और उन नाटक-समितियों के द्वारा सुरुचिपूर्ण नाटकों के अभिनय हों। उन अभिनयों के द्वारा जनता को स्वस्थ मनोरंजन और उच्चकोटि का आनन्द तो प्राप्त हो ही सकेगा, उसकी सांस्कृतिक उन्नति भी हो सकेगी। जनता की यह सांस्कृतिक उन्नति केवल बड़े नगरों ही तक सीमित न रहकर छोटे-छोटे उपनगरों और ग्रामों में भी पहुँचनी चाहिए।

इस आवश्यकता में महत्त्वपूर्ण संभावनाएँ और आशाएँ भी निहित हैं और उनका स्वप्न देखनेवाले तथा सांस्कृतिक दृष्टि से विकसित भारतीय जनता के भव्य भविष्यत् की कल्पना करनेवाले कवि के लिए यह स्वाभाविक ही है कि वह दृश्यकाव्य के उत्कृष्ट अंग नाटकों के निर्माण में उचित उत्साह के साथ लगे। इन पंक्तियों का लेखक भी इस दिशा में अपने दायित्व का गम्भीरतापूर्वक अनुभव करना चाहता है और ऐसा करके वह अपना कर्तव्य-पालन ही करेगा।

असत्य से सत्य का, अशिव से शिव का और असुन्दर से सुन्दर का संघर्ष जीवन की भाँति ही साहित्य और कला के क्षेत्र में भी एक चिरंतन और निरन्तर संघर्ष है। प्राचीन युग में भी यह संघर्ष हुआ और वर्तमान युग में भी हो रहा है। पुरातन काल के इस संघर्ष के फलस्वरूप, जीवन, कला और साहित्य में जो कुछ सत्य, शिव और सुन्दर था, वह, काल और क्षेत्र की सीमा का उल्लंघन करके, बच रहा है और जो कुछ असत्य, अशिव और असुन्दर था, वह नष्ट हो चुका है। वर्तमान युग में भी जीवन, कला और साहित्य के क्षेत्र को जिस असत्य, अशिव और असुन्दर ने आक्रान्त करने का उपक्रम कर रखा है, वह भी इसी संघर्ष के फलस्वरूप अन्ततः परास्त और नष्ट होगा और जो कुछ सत्य, शिव और सुन्दर होगा, वही, काल और क्षेत्र के व्यवधान को लाँघकर, बच रहेगा।

प्रत्येक संघर्ष के समय प्रारम्भ मे मालूम तो यही होता है कि भलाई मे बुराई जीत रही है, पर, अन्ततः, चरम विजय भलाई ही की होती है।

आज जीवन, साहित्य और कला के क्षेत्र के जिम्मेदार कार्यकर्ताओं की बड़ी कठिन परीक्षा हो रही है। जिन मानवीय जीवनमूल्यों को वे अपनी आत्मा की सम्पूर्ण दृढता और गम्भीरता से प्यार करते हैं, उन्हीं पर चारों ओर से बड़े घातक प्रहार हो रहे हैं। रास्ता बड़ा लम्बा और कठिन है। प्राणों मे साधना का विनम्र दीपक जलाए वे तिमिर को चीरते हुए चल रहे है। धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे हैं। उनकी आँखों में, आँखों ही में नहीं, प्राणों मे भी, अपना लक्ष्यबिन्दु बसा है और उसीके आकर्षण, उसीकी प्रेरणा से वे आगे बढ़ रहे है। उनकी साधनहीनता और शक्तिहीनता उनके लक्ष्यप्रेम और उत्साह पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाल पाती।

जीवन से अलग कटकर कला के जीवित रहने का सिद्धान्त अब बहुत पुराना पड़ गया है। आज कला और साहित्य भी जीवन ही के अंग बन गए है। वस्तुस्थिति यह है कि आज यदि जीवन पर प्रहार होता है, तो वह साहित्य और कला पर होता है और यदि साहित्य और कला पर होता है, तो जीवन पर होता है।

मानवीय जीवनमूल्यों पर होनेवाले प्रहारो का उचित एवं स्थायी प्रतिकार प्रतिप्रहार नही हो सकता, बल्कि, रचना ही हो सकती है। यह तथ्य जीवन की भांति ही साहित्य और कला के क्षेत्र मे भी प्रभावशील है। यदि हम कला और साहित्य के क्षेत्र मे सत्य, शिव और सुन्दर पर होनेवाले असत्य, अशिव और असुन्दर के प्रहारो का उचित प्रतिकार करना चाहें, तो हमे सत्य, शिव और सुन्दर के प्रेरक, आराधक और समर्थक साहित्य और कला की अविरत रचना का यत्न करना चाहिए या ऐसे स्वस्थ एवं सुरुचिपूर्ण साहित्य और कला को सक्रिय प्रोत्साहन देना चाहिए। कलाकार या कलाप्रेमी का अपने क्षेत्र का यह रचनात्मक संघर्ष उसके जीवन का उतना ही महत्त्वपूर्ण संघर्ष है, जितना जीवन, राजनीति, अर्थ और समाज के क्षेत्र मे कार्य करनेवाले लोकसेवक का अपने क्षेत्र का संघर्ष हो सकता है। किम्बहुना, सान्ह-

तिक क्षेत्र के इस रचनात्मक संघर्ष का महत्त्व और भी अधिक है, क्योंकि, उसका प्रभाव अधिक स्थायी, गम्भीर और व्यापक होता है।

इन्हीं सब भावनाओं और विचारों से प्रेरित होकर इन पंक्तियों का लेखक अपनी विनम्र तथा अकिंचन साहित्य-साधना में जीवन का आनन्द और सार्थकता अनुभव करता है और नाटकरचना को अपनी साहित्यसेवा में एक विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान देना चाहता है। लेखक का सदा यह यत्न रहा है कि वह जो कुछ लिखे, उसमें सुरुचि का वह संस्पर्श अवश्य रहे, जो मानव को उठाता है, गिराता नहीं। यह उसके उपर्युक्त रचनात्मक संघर्ष का एक प्रमुख प्रेरणासूत्र रहा है। लेखक सौभाग्यशाली है कि इस सूत्र से सम्बन्ध-विच्छेद किए बिना ही वह थोड़ी-सी लोकप्रियता भी पा सका है।

लेखक के पहले नाटक 'प्रतापप्रतिज्ञा' की रचना सन् १९२९ ई० में हुई और उसी वर्ष उसके प्रथम संस्करण का प्रकाशन हुआ। यह बात छिपाई नहीं जा सकती कि वह नाटक इतना लोकप्रिय हुआ कि उसके अब तक एक दर्जन से अधिक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। उसकी सफलता के फलस्वरूप साहित्यिक मित्रों, पाठकों और प्रकाशकों के आग्रह मुझे और अधिक नाटक लिखने की निरन्तर प्रेरणा देते रहे, किन्तु, सन् १९५० के पहले मैं अपना दूसरा नाटक पूरा न कर सका। 'प्रतापप्रतिज्ञा' और 'समर्पण' की रचना के बीच के ये लगभग बीस वर्ष अधिकतर दूसरे कार्यों में बीत गए। उन बीस वर्षों में मैं जमकर यथेष्ट साहित्यसेवा न कर सका। बीच-बीच में जो कविताएँ, निबन्ध आदि लिख लिया करता था, उनके संग्रह अवश्य तैयार हुए और प्रकाशित भी हुए, पर, हिन्दी-पाठकों को एक नाटकावलि भेंट करने की मेरी इच्छा मन की मन ही में रहती चली गई। ये बीस वर्ष व्यर्थ भी नष्ट नहीं हुए। अन्य दिशा में उनका संभवतः एक अच्छा उपयोग भी हुआ। एक विनम्र जनसेवक तथा एक अकिंचन पत्रकार के रूप में मैंने उन वर्षों में भारतीय जनता की राजनीतिक और आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए यथाशक्ति सक्रिय संघर्ष करने का यत्न किया। मैं सोचता हूँ कि मानव के नाते वह मेरा पहला कर्तव्य था। मानवता को मैं साहित्यिकता के ऊपर स्थान देता हूँ।

स्वतन्त्र भारतीय लोकतंत्र के ग्रभ्युदय के उष.काल ने मुझे प्रेरित किय था कि मैं साहित्य, कला और संस्कृति के क्षेत्र में अधिक कार्य करने का यत्न करूँ और मैं प्रमुखतः जो कुछ बन सकता हूँ, वह बनने की ओर अधिक ध्यान दूँ। फलतः, मैं सास्कृतिक क्षेत्र के उपर्युक्त रचनात्मक संघर्ष की ओर अधिक मुड़ने की चेष्टा करने लगा। अपने इस नए निश्चय के फलस्वरूप मैं दो नए कवितासंग्रह पाठकों को अर्पित करने को प्रस्तुत कर चुका हूँ तथा दो नए नाटक भी तैयार कर चुका हूँ। इस प्रकार वस्तुस्थिति यह है कि सन् १९२२ से लेकर १९४९ तक की लगभग २८ वर्षों की अपनी नम्र साहित्य सेवा के द्वारा मैं पाठकों को जितनी पुस्तकें भेट कर सका था, उतनी ही पुस्तकें मैंने सन् १९५० से लेकर १९५२ तक के लगभग तीन ही वर्षों मे उन्हें अर्पित करने को प्रस्तुत कर दी। मुझे सन्तोष है कि मेरे अनेक साहित्यमर्मज्ञ मित्रों ने यह सम्मति दी है कि मेरी ये नई पुस्तकें मेरी पुरानी पुस्तकों से कुछ अच्छी बन पड़ी हैं और लेखक के अनुभव और वय की वृद्धि की दृष्टि से यह विकास किसी हद तक स्वाभाविक ही समझा जा सकता है। पाठकों और प्रकाशकों से भी इन नई पुस्तकों के सम्बन्ध मे मुझे सन्तोषजनक प्रोत्साहन मिलता जा रहा है तथा मिलते रहने की आशा है।

प्रस्तुत 'गौतम नन्द' नाटक 'प्रतापप्रतिज्ञा' तथा 'समर्पण' के बाद नाटक क्षेत्र मे मेरी तीसरी रचना है। मैंने यत्न किया है कि इसकी पृष्ठसंख्या मेरे पिछले नाटकों की पृष्ठसख्या से अधिक न होने पावे। इसके पात्रों की सख्या तो निश्चित रूप से पिछले दोनों नाटकों के पात्रों की सख्या से आधी से भी कम है। इसमे इसके अभिनय के लिए बहुत कम व्यक्तियों की आवश्यकता होगी। इसमें स्त्री और पुरुष दोनों प्रकार के पात्र हैं, अतः, यह मानवता के दोनों अंगों को अभिनय का समान अवसर देता है। इसमें भी मेरे पिछले दोनों नाटकों की भांति केवल तीन ही अंक रखे गए हैं, अतः, यह हिन्दी के अनेक चार-पाँच अंकोंवाले नाटकों की भाँति लम्बा नहीं है। अधिक लम्बे नाटकों के अभिनय में, आधुनिक युग में, समय-सम्बन्धी असुविधा होती है। यह नाटक इतना छोटा भी नहीं है कि इसके अभिनय से दर्शक अतृप्त रह जाये। वास

वार पट-परिवर्तन की आवश्यकता से भी अभिनय में असुविधा होती है। पिछले नाटकों की अपेक्षा इसमें यह असुविधा और भी अधिक सीमा तक दूर कर दी गई है। 'प्रतापप्रतिज्ञा' के तीन अंकों में कुल मिलाकर २३ दृश्य थे, 'समर्पण' में १२ और इसमें केवल ६ ही दृश्यों में तीनों अंकों की परिसमाप्ति हो जाती है। इस प्रकार, पृष्ठों की संख्या कम न करते हुए, दृश्यों की संख्या कम करते जाने की ओर मेरी उत्तरोत्तर प्रवृत्ति स्पष्ट होती गई है। इसमें मैं दृश्यों की संख्या और भी कम कर सकता था, पर, उस दशा में दृश्य बहुत बड़े-बड़े हो जाते। अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों को बीच-बीच में कुछ विश्राम तथा कुछ परिवर्तित स्थिति का अवसर देने की इच्छा ने मुझे वैसा न करने दिया। इसी दृष्टि से इसमें यह भी यत्न किया गया है कि एक ही पृष्ठभूमि और एक ही पात्र लगातार दो दृश्यों में एकदम तत्काल न आने पावे। बड़े-बड़े और आडम्बरपूर्ण मंचनिर्देश देने की कुछ आधुनिक हिन्दी नाटककारों की प्रवृत्ति से भी इसमें परहेज किया गया है। मेरी राय में, इस दिशा में, निर्देशकों को भी, स्वतन्त्रतापूर्वक, कुछ काम करने दिया जाना चाहिए। इसमें यथासम्भव ऐसे दृश्य उपस्थित नहीं किए गए हैं, जिनका अभिनय करना या जिनके लिए साधनसामग्री जुटाना कठिन हो। तात्पर्य यह कि इसे अभिनय की दृष्टि से अधिक से अधिक सुविधाजनक बनाने का पूरा यत्न किया गया है, साथ ही इसे साहित्यिक अध्ययन के योग्य भी बनाया गया है।

अभिनय को महत्त्व देने की धुन में इसके साहित्यिक स्तर को उचित सीमा के नीचे नहीं उतरने दिया गया है। इसका साहित्यिक स्तर भी 'प्रतापप्रतिज्ञा' तथा 'समर्पण' के समान ही है।

भाषा को क्लिष्टता से बचाने का यत्न अवश्य किया गया है, किन्तु, आधुनिक हिन्दी गद्य की प्रचलित प्रांजल परिपाटी को भी कोई आघात नहीं पहुंचाया गया है। भाषा की दृष्टि से भी इसमें 'प्रतापप्रतिज्ञा' ही का अनुकरण किया गया है, जो अभिनय और साहित्यिक अध्ययन दोनों के सामंजस्य की दृष्टि से कतिपय समालोचकों द्वारा सफल घोषित की जा चुकी है।

इन्हीं दोनों के सामंजस्य की दृष्टि से इस नाटक को प्रकाशन के पूर्व

अपने परिचित अभिनेताओं तथा साहित्य के विद्यार्थियों को दिखाकर उनकी सहमति तथा समर्थन भी प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया है। इससे व्यावहारिक रूप मे भी यह विश्वास हो गया है कि यह उक्त दोनो वर्गों के लिए उपयोगी हो सकेगा।

लेखक को यह भी विश्वास होता है कि सामान्य जनता को भी इसे पढ़ने और इसका अभिनय देखने मे कुछ आनन्द आयगा। जो सामान्य पाठक हिन्दी की प्रचलित साहित्यिक पुस्तकें पढ़ और समझ लेते हैं, उनके लिए यह पुस्तक भी दुरूह सिद्ध नही हो सकती। अशिक्षित जनता भी अच्छे अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों द्वारा अभिनीत होने पर इसके अभिनय के सवादों को उसी प्रकार समझ सकेगी, जिस प्रकार रामायण, महाभारत तथा भागवत के आधार पर निर्मित राम और कृष्ण सम्बन्धी ग्रामनाटकों के अभिनयों के सम्वादों को समझ लेती है। जिन क्षेत्रों में हिन्दी भाषा का प्रचलित स्वरूप नही समझा जाता, उनमें अभिनय के समय, क्षेत्रीय सुविधा की दृष्टि से, निर्देशक तथा अभिनेता इसमे भाषा-सम्बन्धी कुछ उचित परिवर्तन भी कर ले सकते हैं।

इस नाटक मे कपिलवस्तु के ऐतिहासिक शासक गौतम शुद्धोदन के कनिष्ठ पुत्र तथा तथागत गौतम बुद्ध के अनुज गौतम नन्द का कथानक है। कथानक कहने को तो ऐतिहासिक है, पर, इतिहास मे उसका उल्लेख विस्तार से नही मिलता। बीज के रूप मे इतिहास मे इतना इंगित मिलता है कि गौतम बुद्ध के गृह-त्याग के बाद शाक्यवंशीय शासक शुद्धोदन ने जिस नन्द पर आशा लगाई थी, वह भी गौतम बुद्ध के आदेश पर, अपने विवाह, नवगृहप्रवेश तथा राज्याभिषेक के ऐन मौक़े पर भिक्षु बन गया था। यह कथानक इतना हृदयस्पर्शी है कि मेरे पुराने प्राध्यापकों में से एक सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ ने इसे नाटकरचना के योग्य बतलाया। फलतः, इतिहास द्वारा बीज-रूप मे प्राप्त इस कथानक को कल्पना के द्वारा पल्लवित और पुष्पित करके नाटक का रूप देने का यत्न किया गया।

गौतम बुद्ध इतने महान् थे कि उनके युग के इतिहास [illegible]हित्य पर

बार पट-परिवर्तन की आवश्यकता से भी अभिनय में असुविधा होती है। पिछले नाटकों की अपेक्षा इसमें यह असुविधा और भी अधिक सीमा तक दूर कर दी गई है। 'प्रतापप्रतिज्ञा' के तीन अंकों में कुल मिलाकर २३ दृश्य थे, 'समर्पण' में १२ और इसमें केवल ९ ही दृश्यों में तीनों अंकों की परिसमाप्ति हो जाती है। इस प्रकार, पृष्ठों की संख्या कम न करते हुए, दृश्यों की संख्या कम करते जाने की ओर मेरी उत्तरोत्तर प्रवृत्ति स्पष्ट होती गई है। इसमें मैं दृश्यों की संख्या और भी कम कर सकता था, पर, उस दशा में दृश्य बहुत बड़े-बड़े हो जाते। अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों को बीच-बीच में कुछ विश्राम तथा कुछ परिवर्तित स्थिति का अवसर देने की इच्छा ने मुझे वैसा न करने दिया। इसी दृष्टि से इसमें यह भी यत्न किया गया है कि एक ही पृष्ठभूमि और एक ही पात्र लगातार दो दृश्यों में एकदम तत्काल न आने पावे। बड़े-बड़े और आडम्बरपूर्ण मंचनिर्देश देने की कुछ आधुनिक हिन्दी नाटककारों की प्रवृत्ति से भी इसमें परहेज किया गया है। मेरी राय में, इस दिशा में, निर्देशकों को भी, स्वतन्त्रतापूर्वक, कुछ काम करने दिया जाना चाहिए। इसमें यथासम्भव ऐसे दृश्य उपस्थित नहीं किए गए हैं, जिनका अभिनय करना या जिनके लिए साधनसामग्री जुटाना कठिन हो। तात्पर्य यह कि इसे अभिनय की दृष्टि से अधिक से अधिक सुविधाजनक बनाने का पूरा यत्न किया गया है, साथ ही इसे साहित्यिक अध्ययन के योग्य भी बनाया गया है।

अभिनय को महत्त्व देने की धुन में इसके साहित्यिक स्तर को उचित सीमा के नीचे नहीं उतरने दिया गया है। इसका साहित्यिक स्तर भी 'प्रतापप्रतिज्ञा' तथा 'समर्पण' के समान ही है।

भाषा को क्लिष्टता से बचाने का यत्न अवश्य किया गया है, किन्तु, आधुनिक हिन्दी गद्य की प्रचलित प्रांजल परिपाटी को भी कोई आघात नहीं पहुँचाया गया है। भाषा की दृष्टि से भी इसमें 'प्रतापप्रतिज्ञा' ही का अनुकरण किया गया है, जो अभिनय और साहित्यिक अध्ययन दोनों के सामंजस्य की दृष्टि से कतिपय समालोचकों द्वारा सफल घोषित की जा चुकी है।

इन्हीं दोनों के सामंजस्य की दृष्टि से इस नाटक को प्रकाशन के पूर्व

अपने परिचित अभिनेताओं तथा साहित्य के विद्यार्थियों को दिखाकर उनकी सहमति तथा समर्थन भी प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया है। इससे व्यावहारिक रूप में भी यह विश्वास हो गया है कि यह उक्त दोनों वर्गों के लिए उपयोगी हो सकेगा।

लेखक को यह भी विश्वास होता है कि सामान्य जनता को भी इसे पढ़ने और इसका अभिनय देखने में कुछ आनन्द आयगा। जो सामान्य पाठक हिन्दी की प्रचलित साहित्यिक पुस्तकें पढ़ और समझ लेते हैं, उनके लिए यह पुस्तक भी दुरूह सिद्ध नहीं हो सकती। अशिक्षित जनता भी अच्छे अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों द्वारा अभिनीत होने पर इसके अभिनय के संवादों को उसी प्रकार समझ सकेगी, जिस प्रकार रामायण, महाभारत तथा भागवत के आधार पर निर्मित राम और कृष्ण सम्बन्धी ग्रामनाटकों के अभिनयों के सम्वादों को समझ लेती है। जिन क्षेत्रों में हिन्दी भाषा का प्रचलित स्वरूप नहीं समझा जाता, उनमें अभिनय के समय, क्षेत्रीय सुविधा की दृष्टि से, निर्देशक तथा अभिनेता इसमें भाषा-सम्बन्धी कुछ उचित परिवर्तन भी कर ले सकते हैं।

इस नाटक में कपिलवस्तु के ऐतिहासिक शासक गौतम शुद्धोदन के कनिष्ठ पुत्र तथा तथागत गौतम बुद्ध के अनुज गौतम नन्द का कथानक है। कथानक कहने को तो ऐतिहासिक है, पर, इतिहास में उसका उल्लेख विस्तार से नहीं मिलता। बीज के रूप में इतिहास से इतना इंगित मिलता है कि गौतम बुद्ध के गृह-त्याग के बाद शाक्यवंशीय शासक शुद्धोदन ने जिस नन्द पर आशा लगाई थी, वह भी गौतम बुद्ध के आदेश पर, अपने विवाह, नवगृहप्रवेश तथा राज्याभिषेक के ऐन मौक़े पर भिक्षु बन गया था। यह कथानक इतना हृदयस्पर्शी है कि मेरे पुराने प्राध्यापकों में से एक सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ ने इसे नाटकरचना के योग्य बतलाया। फलत, इतिहास द्वारा बीज-रूप में प्राप्त इस कथानक को कल्पना के द्वारा पल्लवित और पुष्पित करके नाटक का रूप देने का यत्न किया गया।

गौतम बुद्ध इतने महान् थे कि उनके युग के इतिहास और साहित्य ए-

अधिकतर उन्हींकी छाप है। उन्हींके वर्णन से तत्कालीन इतिहास भरे पड़े हैं। उनके अनुज नन्द के साथ न तो इतिहास ने उचित न्याय किया और न साहित्य ने। इतिहास तो अधिकतर महान् विभूतियों को केन्द्रविन्दु बनाकर चलता ही आया है, साहित्य भी सामान्य व्यक्तियों के प्रति प्रायः कृपण रहा है। भदन्त अश्वघोष ने नन्द तथा उसकी पत्नी सुन्दरी के सम्बन्ध में 'सौन्दरनन्द' नामक एक काव्य संस्कृत में अवश्य लिखा है, किन्तु, उसमें भी तथागत गौतम बुद्ध ही को प्राधान्य और नन्द को गौण स्थान दिया गया है। नन्द के सम्बन्ध में उससे भी मुझे बीजरूप कथानक के अतिरिक्त और कोई सहायता न मिल सकी। फिर भी, जो कुछ सहायता मिली है, उसके लिए मैं इतिहासकारों तथा कविवर अश्वघोष के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

अपनी असाधारण एवं अद्वितीय महत्ता के कारण गौतम बुद्ध के लिए वह सब तप और त्याग करना अत्यन्त स्वाभाविक ही था, जो उन्होंने किया, किन्तु, गौतम नन्द का त्याग और बलिदान भी अपना एक विशेष स्थान रखता है, क्योंकि, वह एक सामान्य राजकुमार थे। उनकी दुर्बलताएँ दुर्दम्य थीं और उनके सामने अपार प्रलोभन थे। भरी जवानी में अत्यन्त अनुरक्त तथा अतीव सुन्दर पत्नी को छोड़कर उन्होंने गृह-त्याग किया था और ठीक ऐसे अवसर पर किया था, जब विवाह, नवगृहप्रवेश और राज्याभिषेक के तीन-तीन महान् अवसर उनके सामने उपस्थित थे। मेरी विनम्र संमति में, अवसरों को छोड़ने की यह पुरानी कहानी अवसरवाद, भोगवाद और स्वार्थ के नए आक्रमणों के विरुद्ध भी रचनात्मक संघर्ष की दीपज्योति बन सकती है। नन्द के त्याग और बलिदान ने लेखक को प्रभावित किया है; आशा है, वे पाठकों को भी प्रभावित करेंगे। पाठकों के पुराने और सुपरिचित प्रेम के विश्वास के आधार पर मैं अपना यह नया नाटक साहित्यक्षेत्र में सविनय प्रस्तुत करता हूँ।

ग्वालियर, २-१०-५२]

—जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द

पहला अ्ंक

पहला दृश्य

[राजकुमारी सुन्दरिका का उद्यान । सायंकाल ।]

[सुन्दरिका और माधविका बैठी हैं। दोनों आपस में बातचीत कर रही हैं। कुछ दूर वीणा रखी है।]

माधविका

सखी सुन्दरिका, राजधानी का वसन्तोत्सव इस बार कुछ फीका-फीका-सा लग रहा था। इसका क्या कारण था ?

सुन्दरिका

कारण तुम भी जानती हो माधविका ! इस बार, उस अवसर पर, हमारी राजधानी के निकट आम्रवन में तथागत गौतम बुद्ध का आगमन हुआ था। अधिकांश नागरिक और नागरिकाएँ उनका उपदेश सुनने वहाँ चली गई थीं। जहाँ जनता ही न हो, वहाँ सार्वजनिक उत्सव कैसा ?

माधविका

उससे एक नई समस्या उत्पन्न हो गई है राजकुमारी ! जबसे महाराज ने तथागत का उपदेश सुना है, तबसे वह राज्यकार्य की ओर से कुछ उदासीन-से रहने लगे हैं। उन्होंने महारानी से स्पष्ट कह दिया है कि अब वह युवराज को राज्य सौंपकर संन्यास ग्रहण करना चाहते हैं। महाराज का कथन है कि उनके गृहस्थ-जीवन का अब केवल एक ही कर्तव्य और शेष रह गया है।

सुन्दरिका

वह क्या ?

माधविका

तुम्हारा विवाह।

[सुन्दरिका के मुख पर क्षण भर लाली की एक झलक दिखाई देती है। वह तत्काल प्रकृतिस्थ हो जाती है।]

सुन्दरिका

व्यर्थ का प्रश्न है यह। आज का युग धीरे-धीरे तथागत गौतम बुद्ध का युग बनता जा रहा है। इस युग में जब संन्यास ही जीवन की सबसे अच्छी स्थिति समझी जा रही हो, तब विवाह का क्या मूल्य ? पहले विवाह करना और फिर भिक्षु बन जाना ! पहले भवन का निर्माण करना और फिर उसका विनाश करना ! मानो जीवन कोई खेल हो ! ऐसे भवन को बनाया ही क्यों जाय, जिसे स्वयं ही आगे चलकर मिटाना हो ?

माधविका

ये कैसी बातें कर रही हो राजकुमारी ? अपने पिता के हृदय की कोमल भावनाओं को समझो ! महाराज के जीवन की इससे बड़ी

इच्छा क्या हो सकती है कि वह अपनी प्रिय पुत्री को सुखमय विवाहित जीवन में प्रवेश करते देखें ?

सुन्दरिका अन्यमनस्क

उनकी सबसे बड़ी आकांक्षा तो प्रव्रज्या है, सबसे बड़ी साध तो संन्यास है। पुत्री तो उनकी आकांक्षा की पूर्ति के मार्ग में एक बाधा है, जिसे पराए घर भेजकर वह अपना मार्ग निष्कण्टक बनाना चाहते हैं। न जाने, इन पुरुषों को क्या हो गया है! छोटे से लेकर बड़े तक, सब के सब, नारी को अपने मार्ग का काँटा समझते हैं। नारी को क्षुद्र समझना ही मानो महत्ता का लक्षण बन गया है। नारी के प्रति घृणा और उपेक्षा की दृष्टि सभी में विद्यमान है; प्रत्येक नागरिक में, और मैं क्षमाप्रार्थिनी हूँ, मेरे पिताजी में भी और पूज्यपाद तथागत गौतम बुद्ध में भी।

माधविका

तथागत में भी ?

सुन्दरिका

हाँ, तथागत में भी। क्या तुम नहीं जानतीं कि तथागत नारी को प्रव्रज्या के योग्य नहीं समझते ? क्या तुमने नहीं सुना कि तथागत कहते हैं कि केवल पुरुषों को बौद्धधर्म के संघ में सम्मिलित करना चाहिए, नारियों को नहीं ? क्या इस सिद्धान्त में नारी को हीन समझने की भावना नहीं छिपी है ? यदि यह मेरा भ्रम हो, तो मैं क्षमाप्रार्थिनी हूँ !

माधविका

भ्रम तो है ही ! तथागत की कितनी प्रशंसा आजकल जन-जन के मुख में सुनी जा रही है ! तथागत-जैसे महात्मा नारीजाति को हीन नहीं समझ सकते। वह स्त्री और पुरुष में भेदभाव नहीं कर सकते। संभव है, पुरुष की दुर्बलता से परिचित होने के कारण, तथागत नारी-

माधविका

उससे एक नई समस्या उत्पन्न हो गई है राजकुमारी ! जबसे महाराज ने तथागत का उपदेश सुना है, तबसे वह राज्यकार्य की ओर से कुछ उदासीन-से रहने लगे हैं। उन्होंने महारानी से स्पष्ट कह दिया है कि अब वह युवराज को राज्य सौंपकर संन्यास ग्रहण करना चाहते हैं। महाराज का कथन है कि उनके गृहस्थ-जीवन का अब केवल एक ही कर्तव्य और शेष रह गया है।

सुन्दरिका

वह क्या ?

माधविका

तुम्हारा विवाह।

[सुन्दरिका के मुख पर क्षण भर लाली की एक झलक दिखाई देती है। वह तत्काल प्रकृतिस्थ हो जाती है।]

सुन्दरिका

व्यर्थ का प्रश्न है यह। आज का युग धीरे-धीरे तथागत गौतम बुद्ध का युग बनता जा रहा है। इस युग में जब संन्यास ही जीवन की सबसे अच्छी स्थिति समझी जा रही हो, तब विवाह का क्या मूल्य ? पहले विवाह करना और फिर भिक्षु बन जाना ! पहले भवन का निर्माण करना और फिर उसका विनाश करना ! मानो जीवन कोई खेल हो ! ऐसे भवन को बनाया ही क्यों जाय, जिसे स्वयं ही आगे चलकर मिटाना हो ?

माधविका

ये कैसी बातें कर रही हो राजकुमारी ? अपने पिता के हृदय की कोमल भावनाओं को समझो ! महाराज के जीवन की इससे बड़ी

इच्छा क्या हो सकती है कि वह अपनी प्रिय पुत्री को सुखमय विवाहित जीवन में प्रवेश करते देखें ?

सुन्दरिका

उनकी सबसे बड़ी आकांक्षा तो प्रव्रज्या है, सबसे बड़ी साध तो संन्यास है। पुत्री तो उनकी आकांक्षा की पूर्ति के मार्ग में एक बाधा है, जिसे पराए घर भेजकर वह अपना मार्ग निष्कण्टक बनाना चाहते हैं। न जाने, इन पुरुषों को क्या हो गया है ! छोटे से लेकर बड़े तक, सब के सब, नारी को अपने मार्ग का काँटा समझते हैं। नारी को क्षुद्र समझना ही मानो महत्ता का लक्षण बन गया है। नारी के प्रति घृणा और उपेक्षा की दृष्टि सभी में विद्यमान है, प्रत्येक नागरिक में, और मैं क्षमाप्रार्थिनी हूँ, मेरे पिताजी में भी और पूज्यपाद तथागत गौतम बुद्ध में भी।

माधविका

तथागत में भी ?

सुन्दरिका

हाँ, तथागत में भी। क्या तुम नहीं जानतीं कि तथागत नारी को प्रव्रज्या के योग्य नहीं समझते ? क्या तुमने नहीं सुना कि तथागत कहते हैं कि केवल पुरुषों को बौद्धधर्म के संघ में सम्मिलित करना चाहिए, नारियों को नहीं ? क्या इस सिद्धान्त में नारी को हीन समझने की भावना नहीं छिपी है ? यदि यह मेरा भ्रम हो, तो मैं क्षमाप्रार्थिनी हूँ !

माधविका

भ्रम तो है ही ! तथागत की कितनी प्रशंसा आजकल जन-जन के मुख में सुनी जा रही है ! तथागत-जैसे महात्मा नारीजाति को हीन नहीं समझ सकते। वह स्त्री और पुरुष में भेदभाव नहीं कर सकते। संभव है, पुरुष की दुर्बलता से परिचित होने के कारण, तथागत नारी-

को पुरुष से दूर रखना चाहते हों। पुरुष के हीन स्वार्थ की वलि वन-कर, नारी गृहस्थ-जीवन में वहुधा जैसी नारकीय स्थिति में पड़ी रहती है, वैसी स्थिति की छाया से अपने संघ को वचाने के लिए ही, संभवतः, तथागत ने नारी की प्रव्रज्या पर प्रतिवन्ध लगाया हो।

सुन्दरिका

कारण कुछ भी हो, पर, स्त्री और पुरुष की असमानता की भावना पर आधारित कोई भी नियम चिरस्थायी नहीं हो सकता। एक भारतीय नारी के रूप में मेरे हृदय में जो दृढ़ आत्मविश्वास है, भविष्य के प्रति जो आस्था है, उसके सहारे मैं डंके की चोट यह कह सकती हूँ कि समदर्शी और न्यायप्रिय तथागत किसी दिन इस तिवन्ध को अवश्य समाप्त कर देंगे और पुरुष की भाँति ही नारी को भी भिक्षुणी वनकर धर्मसंघ में सम्मिलित होने की अनुमति देंगे।

माधविका

परन्तु, मेरी वह विवाहवाली वात तो अधूरी ही रह गई। क्या तुम अपने माता-पिता से विवाह के प्रश्न पर विद्रोह करोगी? क्या तुम उनकी आज्ञा की अवहेलना करके सदा अविवाहित ही रहोगी?

सुन्दरिका

यह तो मैंने नहीं कहा वहन? मैंने तो अपना एक विचा कट किया था। चिन्तन के गर्भ से नम्रता का जन्म होता है दृण्डता का नहीं। यदि माता-पिता का आग्रह ही होगा, तो उनक ाज्ञाकारिणी पुत्री के रूप में मुझे उनका अनुशासन स्वीक करना ही पड़ेगा।

माधविका

कैसी भली है मेरी सहेली ! अच्छा सखी, यह तो बताओ कि वर-के निर्वाचन के सम्बन्ध में महाराज के हृदय का असमंजस कैसे दूर हो सकता है ?

सुन्दरिका

कैसा असमंजस ?

माधविका

महाराज उस दिन महारानी से कह रहे थे कि अपनी राजकुमारी सुन्दरिका के विवाह के लिए हम कपिलवस्तु के शाक्य नरेश शुद्धोदन के पुत्र तथा गौतम बुद्ध के भाई राजकुमार नन्द को चुनना चाहते हैं। गौतम बुद्ध के राज्यत्याग के बाद अब गौतम नन्द ही गौतम शुद्धोदन के राज्य के उत्तराधिकारी हैं। किन्तु, नन्द को स्वीकार करने में एक बहुत बड़ा भय है।

सुन्दरिका

वह क्या ?

माधविका

महाराज को यह भय है कि कहीं राजकुमार नन्द भी तथागत गौतम बुद्ध की प्रेरणा से प्रभावित होकर उनकी भाँति ही भिक्षु न बन जायँ।

सुन्दरिका

यह भय तो प्रत्येक व्यक्ति के सम्बन्ध में हो सकता है। पिताजी क्या आए-दिन यह नहीं सुनते कि एक के बाद एक, नागरिक और शासक, राजा और राजकुमार, तथागत के दर्शन से प्रेरित होकर भिक्षु बनते जा रहे हैं ? तथागत गौतम ने इस देश में प्रव्रज्या की एक शान्तिपूर्ण, किन्तु क्रांतिकारी, लहर उत्पन्न कर दी है। उसके प्रवाह से बचना दिन-पर-दिन कितना कठिन होता जा रहा है ! किन्तु, वास्तविक बात तो कुछ और ही है बहन ! मेरे पिताजी का इस पर विश्वास नहीं है।

माधविका

तुमपर अविश्वास का तो कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता।

सुन्दरिका

क्यों नहीं होता ? क्या यह मुझपर, मेरी सारी क्षमता पर, सरासर अविश्वास नहीं है कि वह यह समझते हैं कि मेरे विवाह के बाद, मेरे जीते-जी, मेरे पति मुझे छोड़कर संन्यास ग्रहण कर सकते हैं ? यह तो मेरे नारीत्व का, मेरे भावी पत्नीत्व का अपमान है। खेद है कि स्वयं मेरे जन्मदाता पिता ने मुझे नहीं समझा। उन्होंने नहीं समझा कि एक भारतीय नारी के रूप में मुझमें एक विशेष क्षमता है, जो मुझे इतिहास से थाती के रूप में मिली है।

माधविका

विशेष क्षमता कैसी ?

सुन्दरिका

ऐसा कि मैं अपने पति में अपने-आपको उसी तरह विसर्जित कर दे सकती हूँ, जिस तरह सीता ने अपनेको राम में कर दिया था। क्या सीता के जीते-जी राम का संन्यासी हो सकना सम्भव था ? खेद है, बहन, आज की नारी, सम्भवतः, प्राचीन युग की नारी से कुछ भिन्न स्तर, भिन्न कोटि पर उतरने का उपक्रम करने लगी है। यह मेरी समझ में नहीं आता कि मेरी माता के रहते मेरे पिता संन्यास ग्रहण करने की बात कैसे सोच रहे हैं और सौभाग्यवती यशोधरा देवी के रहते राजकुमार सिद्धार्थ घर छोड़कर कैसे जा सके !

माधविका

पूजनीया महारानी तथा माननीया यशोधरादेवी के सम्बन्ध में ऐसी असम्मान की भाषा बोलना तुम्हें शोभा नहीं देता सुन्दरिका ! तुम्हारा यह अभिमान तुम्हारे योग्य नहीं है।

सुन्दरिका

अन्याय न करो माधविका ! मेरा आशय उन पूज्य महिलाओं का अपमान करने का नहीं है ! और अपना अहंकार प्रकट करने का तो कदापि नहीं ! मैं तो केवल युग-परिवर्तन की एक बात कह रही थी। एक वह युग था कि पत्नी सीता ने अपने पति राम के हृदय पर अपने निःस्वार्थ और तन्मय प्रेम और सम्पूर्ण तथा निःशेष आत्म-समर्पण से ऐसा अधिकार प्राप्त कर लिया था कि राम को चौदह वर्ष का वनवास और तपस्वी का कठोर जीवन तो सह्य था, किन्तु, सीता का एक क्षण का वियोग भी असह्य। पतिप्राणा सीता से बिछुड़ते ही राम किस प्रकार पेड़ों और पशु-पक्षियों तक से लिपटकर रोए थे ! याद है वह कहानी ! मेरा आदर्श तो वही प्रेममयी पत्नी सीता है। मैं तो पत्नी के वियोग की कल्पना-मात्र से प्रत्येक पति की आँखों में राम के वही अविरल आँसू उमड़ते देखना चाहती हूँ।

माधविका

तब तो महाराज का असमंजस निराधार है। वह नहीं जानते कि राजकुमारी सुन्दरिका के रूप में उन्होंने कितनी महिमामय नारी को जन्म दिया है।

सुन्दरिका

प्रश्न महत्ता का नहीं, लघुता का है। मैंने जो कुछ पढ़ा और सोचा है, उससे मैं इस परिणाम पर पहुँची हूँ कि सामान्य से सामान्य नारी भी जब अपने सारे अहंकार, महत्ता और पृथक्ता के भाव को छोड़कर अपने तन्मय और निःस्वार्थ प्रेम के द्वारा अपने आपे को अपने प्रियतम पति में विसर्जित कर देती है, तब स्वभावतः उसे यह असाधारण अधिकार प्राप्त हो जाता है कि उसका पति भी उसमें पूर्णतया तन्मय हो और उसके बिना अपने जीवन को निरर्थक समझे।

माधविका

तो अब मैं जाऊँ और जाकर महारानी के द्वारा महाराज के पास यह सन्देश पहुँचवाऊँ कि उनकी पुत्री सुन्दरिका ऐसी धातु की बनी हुई है कि उसके जीते-जी यह असम्भव है कि राजकुमार गौतम नन्द, उससे विवाह करके, उसे छोड़कर संन्यासी हो जायँ ?

सुन्दरिका

मुझे इतना महत्त्व न दो माधविका ! मैं एक सामान्य नारी हूँ। पिताजी, माताजी, तथागत गौतम और देवी यशोधरा के चरणों की धूल की बराबरी भी मैं नहीं कर सकती, किन्तु, कभी-कभी ऐसा होता है कि बड़े जिस छोटी-सी बात को अपने बड़प्पन के कारण नहीं समझ पाते, उसे छोटे अपनी लघुता के कारण समझ जाते हैं।

माधविका

कौन-सी छोटी-सी बात ?

सुन्दरिका

ऐसी कई बातें हैं। मेरा हृदय कहता है कि यदि भिक्षु बनना उचित है, तो वह सदा उचित होना चाहिए। जो संन्यास पिताजी स्वयं ग्रहण करना चाहते हैं, वह यदि उचित है, तो उन्हें अपने भावी जामाता के संन्यास-ग्रहण की कल्पना से क्यों काँपना चाहिए ? यदि नारी के अनन्य प्रेम और उसके विवाहित जीवन की शक्ति का पिताजी की दृष्टि में कोई महत्त्व नहीं है, उसपर उन्हें विश्वास नहीं है, तो उन्हें अपनी पुत्री के विवाह की इच्छा क्यों करनी चाहिए और यदि है, तो उन्हें यह भय क्यों होना चाहिए कि उनकी पुत्री अपने प्रेम की सारी शक्ति लगाकर भी उनके भावी जामाता को संन्यास ग्रहण करने से न रोक सकेगी ?

माधविका

और फिर एक बात और भी तो है। राजकुमार गौतम नन्द,

नन्द है, सिद्धार्थ नहीं। उनके सरस हृदय, स्नेहपूर्ण स्वभाव और प्रामोदप्रिय जीवन के यश की सुगन्ध देश-देशान्तर में फैल रही है। हमारी अप्सरा से सुन्दर राजकुमारी को सहधर्मिणी के रूप में पाकर वह सन्यासी होने का कभी स्वप्न भी न देख सकेंगे।

सुन्दरिका

पागलपन की बातें न करो सखी ! देखो, संध्या की सुन्दरता धीरे-धीरे कैसी सघन होती जा रही है ! ये बातें तो बहुत हो चुकी ! अब कुछ स्वर-साधना भी होने दो ! बहुत दिनों से तुम्हारा कोई गान नहीं सुना। अबकी बार तो वसन्तोत्सव भी सूना ही चला गया ! तुम गाती क्या हो, तुम्हारी तन्मय आराधना के सूत्र में बँधकर मानो स्वयं भगवती सरस्वती धरती पर साकार होकर उतरने लगती है। कला के वैभव का उच्च शिखर तुम भले ही प्रकट न करो, पर, अपनी आत्मसमर्पण की भावना से तुम कला की तन्मयता का अनुभव अवश्य करा देती हो। तुम्हें यह किन शब्दों में बताऊँ, बहन, कि योगियों के निर्वाण और ब्रह्मानन्द से तुम्हारी स्वर-तरंग कम आनन्द देनेवाली नहीं होती।

माधविका

झूठी प्रशंसा से कला की अवनति होती है राजकुमारी ! तुम मुझे इस प्रकार लज्जित न करो ! मैं यह अच्छी तरह जानती हूँ कि संगीत-कला के क्षेत्र में मैं क्या हूँ और तुम क्या हो ! तुम्हारी वीणा की झंकार यदि मेरे कण्ठ के स्वर का साथ न दे, तो वह कला के संसार में आधारहीन बटोही की भाँति भटकता ही फिरे। यदि तुम्हारा यही आदेश है, तो मैं तुम्हारी वीणा लिए आती हूँ। यदि तुम वीणा बजाने की कृपा करोगी, तो उसके सहारे मैं भी अपना कण्ठ खोलने का कुछ साहस कर सकूँगी।

[माधविका तत्काल जाकर वीणा ले आती है। उसे सुन्दरिका के हाथ में देती है। सुन्दरिका वीणा बजाती और माधविका गाती है।]

माधविका

[गीत]

भारति, छेड़ो ऐसी तान,
जिससे विषम-व्यथा-विष विगलित,
सुखी, सरस यह जगत्-प्रांत हो;
जन-जन के मन-मन में ज्योतित
स्नेह-दीप निर्धूम, शान्त हो;
कोमल, करुणारण हो कण-कण,
मिटे द्वेष, अभिमान।
भारति, छेड़ो ऐसी तान!

मानव-उर के रससागर में
उठें हिलोरें सहृदयता की,
कला-कलाधर की किरणों के
स्पर्शपुलक की आकुलता की;
हो झंकार श्वास जगती की,
गान विश्व का प्राण!
भारति, छेड़ो ऐसी तान!

[पट-परिवर्तन।]

दूसरा दृश्य

[कपिलवस्तु में राजकुमार गौतम नन्द का वासस्थान । मध्याह्न ।]

[राजकुमार गौतम नन्द तथा राजकुमार देवदत्त बैठे हैं। दोनों वार्तालाप कर रहे हैं।]

नन्द

मित्र देवदत्त, यदि तुम रुष्ट न हो, तो मैं यह पूछना चाहता हूँ कि तुम्हारे मुख पर निरन्तर किसी भयंकर संकल्प की छाया क्यों दिखाई देती है!

देवदत्त

मैं तो निरन्तर अपना मुख नहीं देख सकता राजकुमार नन्द! यह तो दूसरे ही जान सकते हैं कि मेरे मुख पर क्या दिखाई देता है। मैं तो केवल इतना ही जानता हूँ कि मेरे मन में एक द्वन्द्व है। उस अन्तर्द्वन्द्व का मन्थन मुझे निरन्तर व्यस्त-त्रस्त रखता है। उस द्वन्द्व के

मूल में आदर और द्वेष दोनों हैं। दोनों से प्रेरित दो भिन्न-भिन्न संकल्प हैं। आदर से प्रेरित संकल्प की छाया कोमल है और द्वेष से प्रेरित संकल्प की छाया कठोर। कोमलता की छाया मुख पर देख सकना कठिन है, किन्तु, कठोरता की छाया अनायास दिखाई देती रहती है।

नन्द

अपने अन्तर्द्वन्द्व का रहस्य क्या मुझसे भी छिपाओगे भाई ?

देवदत्त

तुमसे तो, मित्र, कुछ भी नहीं छिपाया जा सकता। मेरा अन्तर्द्वन्द्व यह है कि गौतम बुद्ध द्वारा प्रवर्तित धर्म पर जहाँ दिन-पर-दिन मेरी श्रद्धा बढ़ती जा रही है, वहाँ उनके व्यक्तित्व पर मेरा रोष प्रतिक्षण प्रबल होता जा रहा है। मेरी श्रद्धा अन्धी नहीं है, किन्तु, क्रोध अन्धा है। यदि किसी दिन मैं एक बौद्ध भिक्षु बन जाऊँ, तो तुम्हें आश्चर्य न होना चाहिए; यदि किसी दिन बौद्ध धर्म और संघ के सुधार के प्रश्न पर बुद्ध से मेरा मतभेद हो जाय, तो तुम्हें विस्मय न होना चाहिए और यदि किसी दिन मैं व्यक्तिगत द्वेष से पागल होकर सिद्धार्थ की हत्या कर डालूँ, तो उस स्थिति में भी तुम्हें आश्चर्य न करना चाहिए।

नन्द

सिद्धार्थ की हत्या ! ऐसे शब्द मैं नहीं सुन सकता, नहीं सहन कर सकता ! धर्म के पचड़ों से तो मैं दूर हूँ, पर, अपने भाई सिद्धार्थ के व्यक्तित्व के लिए मेरे हृदय में बड़ा प्रेम है, बड़ा आदर है। तुम कैसे विचित्र मनुष्य हो, देवदत्त ! जिन तथागत बुद्ध के धर्म पर तुम्हारी श्रद्धा है, उन्हींके शरीर को तुम नष्ट करना चाहते हो।

देवदत्त

धर्म का शरीर से कोई सम्बन्ध नहीं है नन्द ! और धर्म के विषय में भी मैं बुद्ध का अन्ध अनुयायी न बन सकूँगा। मेरे मन की प्रवृत्ति

पूर्णता की ओर है और बुद्ध की प्रवृत्ति मध्यम मार्ग की ओर। बौद्ध भिक्षु बनकर भी मैं गौतम का निरा पिछलग्गू न बनूँगा। मैं बौद्ध धर्म को पूर्ण तथा अधिक से अधिक शुद्ध बनाने में लग जाना चाहूँगा और यदि सिद्धार्थ मुझसे सहमत न होंगे, तो मैं उन्हें छोड़कर आगे बढ़ना चाहूँगा। यही नही, मैं उनकी ढीली नीति का घोर विरोधी हूँगा।

नन्द

तत्वचर्चा एक अलग वस्तु है देवदत्त! उसपर मेरा कोई अधिकार नही, उसमे मेरी कोई रुचि नही! उसके विवाद मे मैं नहीं पड सकता, नही पड़ना चाहता। किन्तु, मैं एक मनुष्य हूँ, और, मनुष्य होने के नाते, मैं सिद्धार्थ के भ्रातृत्व के स्नेहबन्धन मे बँधा हुआ हूँ। उनका भाई होने के नाते, मैं तुमसे यह जानना चाहता हूँ कि उनके व्यक्तित्व के प्रति तुम्हारे मन में क्यो इतना द्वेष है, क्यों तुम उनकी हत्या करना चाहते हो! तुम मेरे घनिष्ठ मित्र हो, किन्तु, एक भाई का हृदय मुझे विवश करता है कि मैं इस विषय में तुम्हारी कड़ी से कड़ी निन्दा करूँ!

देवदत्त

और एक भाई का हृदय ही मुझे विवश करता है कि मैं गौतम बुद्ध से अधिक से अधिक द्वेष करूँ और अपने स्वाभाविक रोष के कारण, अवसर मिलते ही, उनकी हत्या करने का यत्न करूँ। मेरे भी भाई का हृदय है नन्द! मैं यशोधरा का भाई हूँ और अपनी साध्वी पत्नी यशोधरा के साथ अनुचित व्यवहार करके सिद्धार्थ ने मुझे अपना घोर शत्रु बना लिया है। इस शत्रुता मे उनकी धर्म और संघ सम्बन्धी मध्यममार्गी नीति और मेरी पूर्णतावादी प्रवृत्ति के कारण और भी वृद्धि होना स्वाभाविक है।

नन्द

यशोधरा-भाभी के मुख से तो मैंने कभी सिद्धार्थ-भैया की कोई आलोचना नही सुनी।

आखेट को न जा सका हूँ। लक्ष्यवेध का अभ्यास छूटा जा रहा है। आहेर के बिना तुम्हारा अतिथि-सत्कार भी अधूरा ही रहेगा। यदि तुम भी मेरे साथ चलने को तैयार हो, तो मृगया का प्रबन्ध कराया जाय। शिकार

देवदत्त

मृगया मेरे लिए अब विस्मृति का विषय बना चाहती है। धीरे-धीरे अहिंसा-धर्म पर मेरा विश्वास बढ़ता जा रहा है। मैं यह समझने में असमर्थ हूँ कि सिद्धार्थकुमार के इतने प्रबल समर्थक होते हुए भी तुम पशु-पक्षियों की हत्या में इतनी अधिक रुचि क्यों प्रकट करते हो ?

नन्द

इसलिए कि मैं क्षत्रिय हूँ, राजकुमार हूँ, गृहस्थ हूँ; संन्यासी नहीं, भिक्षु नहीं, धर्माचार्य नहीं !

देवदत्त

क्षत्रिय और राजकुमार तो मैं भी हूँ, किन्तु, पशु-पक्षियों को मनोरंजन या जिह्वा के स्वाद के लिए मारना मैं अपने क्षत्रियत्व और वीरता के लिए अत्यन्त लज्जाजनक समझता हूँ।

नन्द

किन्तु, सम्भवतः, व्यक्तिगत द्वेष या क्रोध के कारण किसी मनुष्य की हत्या का संकल्प करना तुम्हारी दृष्टि में प्रथम श्रेणी का क्षत्रियत्व और वीरत्व है।

देवदत्त

तुमने फिर वह प्रसंग छेड़ दिया। मैं तुमसे फिर प्रार्थना करता हूँ कि तुम सिद्धार्थ के प्रश्न को लेकर मुझसे विवाद करना सदा के लिए छोड़ दो, अन्यथा, हम दोनों की यह मित्रता, जिसे मैं किसी भी मूल्य पर नष्ट नहीं होने देना चाहता, समाप्त हुए बिना न रहेगी।

नन्द

अच्छा, अब भविष्य में ऐसा न होगा। पर, तुम मेरी प्रार्थना

मानकर मृगया के लिए चलना तो स्वीकार कर ही लो ! एक बार की मृगया ही से तुम्हारा अहिंसा का संकल्प न टूट जायगा।

देवदत्त

क्या तुम मृगया के आग्रह के बन्धन से मुझे मुक्त नहीं कर सकते ? इस विषय में तो मुझे क्षमा ही करो, भाई !

नन्द

अच्छा, तो फिर यशोधरा-भाभी की ओर चलो ! कितनी अच्छी हैं मेरी भाभी ! चलकर उन्हीं से बातचीत करेंगे।

देवदत्त

क्या तुम्हारे पास केवल दो ही मार्ग हैं ? यदि मैं मृगया के लिए जाना अस्वीकार करूँ, तो क्या यशोधरा-बहन के सामने जाना पड़ेगा ? अच्छा, तो फिर मृगया ही को चलो। यशोधरा के सामने जाने में मुझे बड़ा दुःख होता है। जब-जब वह सामने आती है, मेरे हृदय पर गहरा आघात पहुँचता है। मेरी बहन यशोधरा संसार की एक सबसे अधिक दुखी नारी है और सबसे बुरी बात यह है कि उसका आत्मसंयम उसे रो-रोकर अपना दुःख हलका करने की भी अनुमति नहीं देता। उसके सामने जाते ही दुःख से मेरी छाती फटने लगती है, वेदना असह्य हो उठती है। यशोधरा के पास जाने से अच्छा तो यही है कि मैं जंगल में जाकर, पागल की भाँति, पशु-पक्षियों की हत्या करता फिरूँ ! अच्छा, चलो नन्द, मृगया को चलो, मृगया ही को चलो ! और कोई मार्ग ही नहीं है !

[पट-परिवर्तन।]

तीसरा दृश्य

[कपिलवस्तु । कुम्भक का वासस्थान । प्रातःकाल ।]

[कुम्भक तथा कुण्डेश्वरी बैठे हुए बातचीत कर रहे हैं]

कुम्भक

उम्र के साथ-साथ तुम्हारी नासमझी भी बढ़ती जा रही है। पनी बुद्धि की प्रतिष्ठा नष्ट होने की तुम्हें तिल-भर भी चिन्ता नहीं । तुम कभी यह भी नहीं सोचतीं कि तुम मुझ-जैसे अत्यन्त बुद्धिमान रोहित, सुप्रसिद्ध याज्ञिक और महान् कर्मकांडी पण्डित कुम्भकाचार्य शर्मा मध्यममार्गी की धर्मपत्नी श्रीमती कुण्डेश्वरी देवी हो ! तुम अनेक बार ऐसी भयानक भूल कर बैठती हो कि……

कुण्डेश्वरी

ऐसा क्या कर दिया मैंने ?

कुम्भक

सर्वनाश कर दिया, सर्वनाश ! लड्डुओं का हण्डा और

सोमरस का घड़ा खुला रह जाने दिया। इससे दो महाभयानक हानियाँ हो गईं।

कुण्डेश्वरी

महाभयानक हानियाँ !

कुम्भक

हाँ, महाभयानक हानियाँ ! घर-भर के चूहे और बिल्लियाँ लड्डू खा-खाकर मोटे और सोमरस पी-पीकर मतवाले हो गए हैं। दोनों आपस का, युग-युग का, सारा वैर-विरोध भूलकर, मेरे शत्रु हो गए हैं। मेरे घर-भर में उन्होंने आजकल, मिल-जुलकर, ऐसी भीषण धमाचौकड़ी मचा रखी है कि उसके आगे बड़े-बड़े उपद्रव, बड़े-बड़े विप्लव और बड़ी-बड़ी राज्य-क्रांतियाँ फीकी पड़ गई हैं।

कुण्डेश्वरी

और दूसरी भयानक हानि ?

कुम्भक

भयानक नहीं, महाभयानक कहो ! दूसरी महाभयानक हानि यह हुई कि परमप्रिय मोदकों और जीवन सर्वस्व सोमरस के अभाव में अपने-राम का हाथी-जैसा शरीर धीरे-धीरे सूख-सूखकर केवल भैंसे-जैसा हो रहा जा रहा है। कितनी बार तुमसे कहा कि 'शरीरमाद्य खलु धर्मसाधनम्' अर्थात् शरीर ही खलों के धर्म का पहला साधन है। अरे, अरे, भूल हो गई ! खलु अर्थात् खलों का नहीं, खलु अर्थात् वास्तव में, वास्तव में, वास्तव में। हाँ, तो मेरा आशय यह था कि शरीर ही वास्तव में धर्म का पहला साधन है। मैंने तुमसे कितनी बार कहा कि मेरे प्यारे शरीर के विकास के मार्ग में, मेरे खाने-पीने के कार्यक्रम में, कभी कोई बाधा न पड़ने दिया करो !

कुण्डेश्वरी

ऐसी क्या बाधा पड़ गई ?

कुम्भक

साधारण बाधा नहीं; महाभयानक बाधा ! मैं कह तो चुका कि तुमने अपनी असावधानी से घर के चिरसंचित समस्त मोदक और सँभाल-सँभालकर रखा गया सारा सोमरस चूहे-बिल्लियों से चट करा दिया । उन्हीं दोनों पदार्थों के सहारे तो मेरा यह शरीर दिन-दूना और रात-चौगुना विकसित हो रहा था । अब तो यह उनके विरह में धीरे-धीरे सूखता जा रहा है । हाय, अब मेरा व्यवसाय कैसे चलेगा ?

कुण्डेश्वरी

क्यों ? व्यवसाय क्यों नहीं चलेगा ?

कुम्भक

अरी नासमझ, आजकल के यजमान उसी याज्ञिक को यज्ञ कराने को बुलाते हैं, जिसका शरीर सबसे मोटा होता है । इस युग में मुटापा ही पाण्डित्य का मुख्य चिह्न समझा जाता है, पाण्डित्य ही धर्म का ठोस साधन और धर्म ही धन्धे का मूलाधार । अरी भद्रा, तुमने मेरा धंधा चौपट कर दिया ! आजकल मुझे निमंत्रण बहुत ही कम मिल रहे हैं । अब यह पाँच लड़कों और चार लड़कियों की विराट् गृहस्थी कैसे चलेगी ? मेरा तो रोने को जी चाहता है, रोने को ! अपने युग का सबसे महान् कर्मकाण्डी कुम्भक शर्मा तुम्हारी असावधानी से धूल में मिला चाहता है ! हाय, अब क्या होगा ?

कुण्डेश्वरी

अच्छे पुरुष हुए हो तुम ! पुरुषार्थ के बदले रुदन का पल्ला पकड़ना चाहते हो !

कुम्भक

अरी भद्रा, रोऊँ नहीं, तो क्या करूँ ? अभी मैं जीवन के पिछले एक झटके से तो सँभला हूँ न था कि यह दूसरा नया झटका आ गया। पहले झटके की तोड़ निकालने में मेरे तीस दिन घुल गए थे, पूरे तीस दिन ! तब कहीं जाकर बिगड़ता हुआ खेल फिर से बना था ! बात यह हुई थी कि उस दिन अचानक मेरे एक मुख्य यजमान महाराज शुद्धोदन ने मुझसे कह दिया था कि अब आप यज्ञ कराने न आया करें; यज्ञ में पशु-बलि की प्रथा है और राजकुमार सिद्धार्थ के परिव्राजक होकर अहिंसा का आग्रह करने के कारण हमारी रुचि अब पशुबलि में बिलकुल नहीं रही है। और कोई होता, तो निराश होकर बैठ रहता, किन्तु, मालूम है, अपने राम ने क्या किया ?

कुण्डेश्वरी

क्या ?

कुम्भक

पूरे तीस दिन तक इतने वेग से चिन्तन की धुरी पर मस्तिष्क के चक्र को दौड़ाया कि इस पहाड़-से शरीर से पसीने की धारें छूटने लगीं। अन्त में समस्या का समाधान सूझ ही तो गया। हमने झट महाराज शुद्धोदन से जाकर कह दिया कि कर्मकाण्ड और यज्ञ वंशपरम्परागत हैं, वे किसी भी प्रकार बन्द नहीं किए जा सकते और यज्ञ में पशुबलि की प्रथा भी सनातन है, उसे भी नहीं मिटाया जा सकता। सारे आयोजन पहले की भाँति ही चलेंगे, केवल इतना अन्तर होगा कि रक्त-मांस के पशुओं के बदले पशुओं की आटे की पूरे आकार की मूर्तियाँ बनवाकर उनकी बलि दी जाया करेगी। इससे पूर्वजों की प्रथा भी न मिटेगी और सिद्धार्थकुमार का अहिंसा का सिद्धान्त भी बना रहेगा।

कुण्डेश्वरी

फिर क्या हुआ ?

कुम्भक

और क्या होता ? हमारी इस समन्वयवृत्ति, इस मध्यममार्गी व्यवस्था से महाराज शुद्धोदन और उनकी सारी राजसभा गद्गद हो गई। हमारे लिए सौ-सौ कण्ठों से 'धन्य, धन्य' की ध्वनि निकल पड़ी। उसी समय हमारी पूरी नाम-उपाधि 'श्रीमान् पण्डित कुम्भकाचार्य शर्मा मध्यममार्गी' स्वीकार की गई। हमारा याज्ञिक का, पुरोहित का, वंशपरम्परागत व्यवसाय नष्ट होते-होते बच गया। अरी भद्रा, अब दूसरा संकट तुमने उत्पन्न कर दिया है।

कुण्डेश्वरी

मुझे दोष देना तो तुम्हारा स्वभाव ही बन गया है।

कुम्भक

मैं झूठा दोष नहीं दे रहा। पुरोहित का व्यवसाय तभी तक चल सकता है, जब तक उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली हो। मोटा शरीर और सूक्ष्म बुद्धि, इन्हीं दो पहियों के सहारे प्रभाव की गाड़ी चलती है। तुमने इनमें से एक को चकनाचूर करने का यत्न किया है। अब केवल एक पहिये के सहारे व्यवसाय की गाड़ी कैसे चलेगी ? दुबले-पतले पुरोहित को आजकल कोई नहीं पूछता, कोई नहीं बुलाता। स्थूल शरीर ही का यजमान पर प्रभाव पड़ता है। हाय, अब मेरा व्यवसाय कैसे चलेगा !

कुण्डेश्वरी

अपनी सूक्ष्म बुद्धि का भी तो तुम्हें बड़ा अभिमान है। फिर, निकालो कोई अच्छा मार्ग !

कुम्भक

झूठा अभिमान नहीं है मुझे ! नई-नई तिकड़में खोज निकालने में मेरी सूक्ष्म बुद्धि की बराबरी कर सकनेवाले संसार में बहुत कम

निकलेंगे ! यौवन में प्रवेश करने के पहले मैं केवल कुम्भक बटुक कहलाता था। अपनी सूक्ष्म बुद्धि के सहारे ही धीरे-धीरे कहलाने लगा कुम्भकाचार्य शर्मा और इसीके बल पर एक दिन बन गया श्रीमान् पण्डित कुम्भकाचार्य शर्मा मध्यममार्गी। बलिप्रधान कर्मकाण्ड और बुद्ध महिमा, दोनों को एक साथ निभाना सिंह और गाय को एक घाट पर पानी पिलाना है। मुझे छोड़कर और किसमें ऐसी प्रतिभा हो सकती थी कि संसार का यह अद्भुत चमत्कार करके दिखलाता !

कुण्डेश्वरी

ऐसा ही कोई चमत्कार इस बार और करके दिखलाओ, तब जानूँ !

कुम्भक

यदि दिखलाऊँगा नहीं, तो सुरसा के मुख की भाँति बढ़ने जानेवाले परिवार को क्या खिलाऊँगा ? अच्छा, एक काम करो !

कुण्डेश्वरी

क्या ?

कुम्भक

मुझे उढ़ाकर सुला दो ! नगर में यह समाचार प्रचारित करा दो कि मुझपर किसी रोग ने आक्रमण किया है। ऋण के सहारे घर में लड्डुओं और सोमरस के संचय का फिर से प्रबन्ध करो। कुछ दिनों तक मुझे खुले हाथ से खिलाने-पिलाने की व्यवस्था करो और इतने गुप्त रूप से करो कि किसीको पता न चले। जिस समय लोग सहानुभूति प्रकट करने आवें, उस समय रोग का अभिनय मैं करूँ और रुदन का अभिनय तुम करो और जब वे चले जायँ, तब भीतर से किवाड़ बन्द करके मुझे भरपेट मोदक खिलाओ। ऊपर से छककर सोमरस पीने दो !

कुण्डेश्वरी

इससे क्या होगा ?

पहला दृश्य

[कपिलवस्तु की सीमा से लगा हुआ वन। दिन का तीसरा पहर।]

[मृगया की वेशभूषा तथा सज्जा में नन्द और सुन्दरिका वार्तालाप करते हुए प्रवेश करते हैं।]

नन्द

कभी-कभी संयोगवश किसी विचित्र स्थान पर विभिन्न स्थितियों के व्यक्ति एक-दूसरे के साथ हो जाते हैं! आज भी ऐसा ही हुआ है। अचानक इस निर्जन वन में आपका और मेरा साथ हो गया, पर, यह अपरिचितों का साथ है। यदि आपको कोई आपत्ति न हो, तो कृपया मुझे एक बात जानने का अवसर दीजिए!

सुन्दरिका

क्या ?

नन्द

आपका शुभ नाम क्या है ?

सुन्दरिका

नाम बताने में किसीको क्या आपत्ति हो सकती है ? मेरा नाम सुन्दरिका है।

नन्द

सुन्दरिका ! राजकुमारी सुन्दरिका !

सुन्दरिका

क्या मनुष्य होना पर्याप्त नहीं है ? क्या राजकुमारी होने का कोई विशेष महत्त्व है ?

नन्द

क्षमा कीजिए ! पूरे परिचय के लिए मेरे मुंह से 'राजकुमारी' शब्द निकल गया !

सुन्दरिका

आपने तो मेरा पूरा परिचय पा लिया। पर, मुझे तो अभी तक आपका अधूरा परिचय भी नहीं मिला। क्या आपको अपना शुभ नाम बताने में कोई आपत्ति है ?

नन्द

नहीं तो ! मुझे आपत्ति क्यों होने लगी ! मेरा नाम नन्द है।

सुन्दरिका

नन्द ! महाराज शुद्धोदन के पुत्र, राजकुमार नन्द !

नन्द

क्या मनुष्य होना पर्याप्त नहीं है ? क्या 'महाराज शुद्धोदन के पुत्र, राजकुमार' होने का कोई विशेष महत्त्व है ?

सुन्दरिका

क्षमा कीजिए ! मुझसे भी वही भूल हो गई। पूरे परिचय के लिए मेरे मुख से वे शब्द निकल गए।

नन्द

पर, पूरा परिचय तो अभी बहुत दूर है। मनुष्य के पूरे जीवन में भी किसीको उसका पूरा परिचय नहीं मिल पाता।

सुन्दरिका

हम लोग बहुत चल चुके ! अब तो आप थक गए होंगे !

नन्द

मैं थका तो नहीं हूँ। पर, इसमें कोई सन्देह नहीं कि हम बहुत चल चुके हैं। कुछ देर रुक लेने में कोई हानि नहीं। विश्राम के लिए यह स्थान बुरा भी नहीं है।

सुन्दरिका

बुरा क्यों होने लगा ! मुझे तो यह स्थान अच्छा ही लग रहा है।

[दोनों बैठकर बातचीत करने लगते हैं।]

नन्द

मैं जब मृगया के लिए इस वन में आया, तब मुझे यह कल्पना न थी कि आप-जैसी कोई राजकुमारी भी आखेट के लिए इसी वन में आई होंगी।

सुन्दरिका

मृगया पर तो राजकुमारों ही का अधिकार है न, कोई कुमारी आखेट के लिए वन में आने की धृष्टता कर ही कैसे सकती है !

नन्द

क्षमा कीजिए ! मेरा आशय यह नहीं था कि कुमारों और कुमारियों के अधिकारों में अन्तर होना चाहिए। मैं तो अपना

स्वाभाविक आश्चर्य प्रकट कर रहा था। उससे भी बढ़कर एक आश्चर्य मुझे और हुआ।

सुन्दरिका

वह क्या ?

नन्द

मैंने आपके अद्भुत साहस, शक्ति और वीरता का परिचय पाया। पहले ही बाण से सिंह को मार गिराना आप ही का काम था। आप-जैसी वीरांगनाएँ भारत के लिए वास्तव में गौरवस्वरूप हो सकती हैं।

सुन्दरिका

इतना बड़ा असत्य-कथन आपको शोभा नहीं देता। मेरा बाण लगने के पहले ही आपका खड्ग उस सिंह के दो टुकड़े कर चुका था। मुझे आश्चर्य है कि आप खड्ग के पहले ही प्रहार से सिंह को कैसे मार सके! इतना साहस, इतनी शक्ति और इतनी वीरता तो मैंने इसके पहले किसी पुरुष में नहीं देखी।

नन्द

इस प्रश्न पर विवाद करने के बदले हमें समझौते का मार्ग अपनाना चाहिए। लीजिए, मैंने समझौते का उपाय सोच लिया।

सुन्दरिका

क्या ?

नन्द

हम दोनों को एकमत होकर यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि हमें एक-दूसरे के इस वन में होने की कोई कल्पना न थी। अचानक सिंह मेरे सामने आ गया। मृगया में मेरे तूणीर के सारे बाण उसके पहले ही समाप्त हो चुके थे। इसलिए, मुझे सिंह पर अपने खड्ग से

प्रहार करना पड़ा। उधर आप सिंह का पीछा करती हुई आ रही थीं। मेरे खड्ग के साथ ही आपका बाण भी सिंह के शरीर को बेधकर एक ओर से दूसरी ओर निकल गया।

सुन्दरिका

पर, सिंह मरा तो आप ही के खड्ग के प्रहार से।

नन्द

नहीं, दोनों का सम्मिलित प्रहार एक-साथ होने से मरा।

सुन्दरिका

यह तो आप केवल समझौते के लिए कह रहे हैं।

नन्द

जीवन और संसार में सद्भावनापूर्ण समझौते का बहुत बड़ा महत्त्व है। जिसे इस जगत् में जीवन-भर अकेला रहना हो, वही समझौते की सत्ता को अस्वीकार कर सकता है।

सुन्दरिका

मुझे रह-रहकर यह विचार दुखी कर रहा है कि आज की इस मृगया में मेरी सखी माधविका मुझसे बिछुड़ गई है।

नन्द

मैं भी खिन्न हूँ कि मेरे मित्र देवदत्त आज के आखेट में मुझसे अलग हो गए हैं। पर, चिन्ता करने से कोई लाभ नहीं। कुछ देर यहीं ठहरना चाहिए। सम्भव है, दिन छिपने के पहले दोनों हमें ढूँढ़ते-ढूँढ़ते यहीं आ पहुँचें। अच्छा, यह तो बताइए कि मृगया की ओर आपकी रुचि कैसे हुई?

सुन्दरिका

मेरे पिताजी आखेट के बिना एक दिन भी नहीं रह सकते थे। उनका मुझपर स्नेह भी बहुत था। जब-जब वह मृगया के लिए निकलते, तब-तब मैं उनके साथ जाने का हठ करती। विवश

स्वाभाविक आश्चर्य प्रकट कर रहा था। उससे भी बढ़कर एक आश्चर्य मुझे और हुआ।

सुन्दरिका

वह क्या ?

नन्द

मैंने आपके अद्भुत साहस, शक्ति और वीरता का परिचय पाया। पहले ही बाण से सिंह को मार गिराना आप ही का काम था। आप-जैसी वीरांगनाएँ भारत के लिए वास्तव में गौरवस्वरूप हो सकती हैं।

सुन्दरिका

इतना बड़ा असत्य-कथन आपको शोभा नहीं देता। मेरा बाण लगने के पहले ही आपका खड्ग उस सिंह के दो टुकड़े कर चुका था। मुझे आश्चर्य है कि आप खड्ग के पहले ही प्रहार से सिंह को कैसे मार सके! इतना साहस, इतनी शक्ति और इतनी वीरता तो मैंने इसके पहले किसी पुरुष में नहीं देखी।

नन्द

इस प्रश्न पर विवाद करने के बदले हमें समझौते का मार्ग अपनाना चाहिए। लीजिए, मैंने समझौते का उपाय सोच लिया।

सुन्दरिका

क्या ?

नन्द

हम दोनों को एकमत होकर यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि हमें एक-दूसरे के इस वन में होने की कोई कल्पना न थी। अचानक सिंह मेरे सामने आ गया। मृगया में मेरे तूणीर के सारे बाण उसके पहले ही समाप्त हो चुके थे। इसलिए, मुझे सिंह पर अपने खड्ग से

प्रहार करना पड़ा। उधर आप सिंह का पीछा करती हुई आ रही थीं। मेरे खड्ग के साथ ही आपका बाण भी सिंह के शरीर को वेधकर एक ओर से दूसरी ओर निकल गया।

सुन्दरिका

पर, सिंह मरा तो आप ही के खड्ग के प्रहार से।

नन्द

नहीं, दोनों का सम्मिलित प्रहार एक-साथ होने से मरा।

सुन्दरिका

यह तो आप केवल समझौते के लिए कह रहे हैं।

नन्द

जीवन और संसार में सद्भावनापूर्ण समझौते का बहुत बड़ा महत्त्व है। जिसे इस जगत् में जीवन-भर अकेला रहना हो, वही समझौते की सत्ता को अस्वीकार कर सकता है।

सुन्दरिका

मुझे रह-रहकर यह विचार दुखी कर रहा है कि आज की इस मृगया में मेरी सखी माधविका मुझसे बिछुड़ गई है।

नन्द

मैं भी खिन्न हूँ कि मेरे मित्र देवदत्त आज के आखेट में मुझसे अलग हो गए हैं। पर, चिन्ता करने से कोई लाभ नहीं। कुछ देर यहीं ठहरना चाहिए। सम्भव है, दिन छिपने के पहले दोनों हमें ढूँढते-ढूँढते यहीं आ पहुँचें। अच्छा, यह तो बताइए कि मृगया की ओर आपकी रुचि कैसे हुई?

सुन्दरिका

मेरे पिताजी आखेट के बिना एक दिन भी नहीं रह सकते थे। उनका मुझपर स्नेह भी बहुत था। जब-जब वह मृगया के लिए निकलते, तब-तब मैं उनके साथ जाने का हठ करती। विवश होकर उन्होंने

मुझे मृगया का अभ्यास कराया और वह हर बार मुझे अपने साथ आखेट को ले जाने लगे।

नन्द

पर, आज तो आपके पिताजी आपके साथ नहीं आए।

सुन्दरिका

बहुत दिनों से वह आखेट न करने का व्रत ले चुके हैं।

नन्द

क्यों ?

सुन्दरिका

तथागत गौतम बुद्ध के अहिंसा के प्रवचनों का उनपर गहरा प्रभाव पड़ा है।

नन्द

तथागत की महिमा ऐसी ही है। उनके सम्पर्क में जो कोई आता है, वह उनका अनुयायी बन जाता है। आपके पिताजी भी मेरे पिताजी ही के मार्ग पर आ गए हैं।

सुन्दरिका

क्यों ? क्या महाराज शुद्धोदन ने भी मृगया का परित्याग कर दिया है ?

नन्द

हाँ, बहुत दिनों से। वह तो मुझे भी रोकना चाहते थे, पर मैंने उनसे क्षमा प्रार्थना कर ली। मुझसे तो मृगया के बिना नहीं रहा जाता।

सुन्दरिका

मेरी भी यही दशा है। पिताजी ने मुझसे स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि मैं मृगया के लिए जाना बन्द कर दूँ। बहुत प्रार्थना करने पर इस प्रतिबन्ध के साथ अनुमति दी कि मैं बहुत ही थोड़ी संख्या में पशुओं का संहार करूँ और वह भी केवल हिंस्र पशुओं का।

नन्द

हम दोनों की एक ही सी स्थिति है। मुझपर भी यही प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। इसका एक फल यह हुआ है कि शाकाहारी बन जाना पड़ा है। वन में मृगया के लिए आने पर मुख्यतया प्रकृति के वरदानस्वरूप वन्य फलों ही पर निर्भर रहना अच्छा लगता है। आज भी मेरे पास केवल कुछ फल ही हैं। मृगया में परिश्रम के कारण भूख अधिक लगती है। समय भी बहुत अधिक हो चुका है। आप यदि अनुमति दें, तो कुछ फल आपको भी अर्पित करूँ।

सुन्दरिका

अब मेरी थकान उतर चुकी है और मैं जाना चाहती हूँ। अब तो घर पहुँचकर ही भोजन करूँगी।

नन्द

क्या अपनी सहेली की प्रतीक्षा न कीजिएगा? देखिए, वन की मृगया का साथी कठिन समय और कठिन स्थान का साथी होता है; उससे इतना अधिक संकोच करना उचित नहीं होता। आपको मेरी यह तुच्छ भेंट स्वीकार करनी चाहिए।

[नन्द अपने मृगया के वस्त्रों में से कुछ फल निकालकर सुन्दरिका के सामने रखते हैं। सुन्दरिका सकुचाती हुई उनमें से एक फल लेती हैं।]

सुन्दरिका

आप भी तो खाइए! क्या अधिक श्रम मैंने ही किया है, आपने नहीं? क्या अधिक समय मेरे ही लिए हुआ है, आपके लिए नहीं?

[नन्द एक फल लेकर खाने लगते हैं। सुन्दरिका भी एक फल खाती हैं।]

नन्द

वन-भोजन इन्द्रपुरी के पकवानों से भी मधुर होता है। [illegible] यव

दो व्यक्ति मिलकर वन-भोजन करते हैं, तब तो उसकी मधुरता दूनी हो जाती है।

सुन्दरिका

यदि हम दोनों के विछुड़े हुए दोनों साथी और मिल जाते, तो यह मधुरता चौगुनी हो जाती। मेरी सम्मति में, आधार के लिए एक-एक फल खाना ही पर्याप्त होगा। शेष फल उन लोगों की प्रतीक्षा में रख देना उचित होगा।

नन्द

मैं भी इस विषय में आपसे सहमत हूँ। (कुछ रुककर) क्षमा कीजिए, मुझे अपने विषय में भी आपसे एक बात और कहनी है। बड़ा संकोच हो रहा है कहने में, पर, यदि आप अनुमति दें, तो मैं इस समय आपसे वह बात कह देना चाहता हूँ। क्षमा कीजिए, उसपर मेरा जीवन निर्भर है। वह एक ऐसी बात है कि यदि जीवन में उसे कभी कहना ही हो, तो उसके लिए आज के इस अवसर से अच्छा अवसर कभी नहीं मिल सकता।

सुन्दरिका

ऐसी क्या बात है ? कहिए ! संकोच की क्या आवश्यकता है !

नन्द

संकोच तो होता ही है। बहुत संकोच हो रहा है। ऐसे विषय में संकोच होना स्वाभाविक भी है। पर, वह बात कहना भी आवश्यक है। बात यह है कि मैंने अपने पिताजी से सुना था कि आपके पिताजी आप-जैसे नारीरत्न के योग्य मुझ अकिंचन को समझकर, मुझे जीवन का महान् सौभाग्य देना चाहते हैं।

सुन्दरिका

मैंने भी अपने पिताजी से सुना था कि आपके पिताजी मुझे आपके............

नन्द

विवाह के सम्बन्ध में दोनों के गुरुजनों के सन्देश तो एक-दूसरे तक पहले ही पहुँच चुके हैं। आज मुझे भी अनायास वह सौभाग्य मिल गया है कि मैं स्वयं भी आप तक अपना अनुरोध पहुँचा सकूँ।

सुन्दरिका

यथासमय स्वच्छ हृदय से विवाह का स्पष्ट प्रस्ताव करने में कोई बुराई नहीं होती। स्थिति अनुकूल प्रतीत होने पर भी विवाह के सम्बन्ध में प्रस्ताव करने में जो संकोच होता है, उसे मैं स्वयं समझती हूँ। आपने अपने मन की बात मुझसे कह दी, इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देती हूँ। पर, मैं आपको बता देना चाहती हूँ कि यह सम्भव नहीं है। इस बात को आगे बढ़ाने में कोई लाभ नहीं। क्षमा कीजिए, अब मैं जाती हूँ। समय बहुत हो गया। यदि माधविका आपको कहीं मिल जाय, तो, कृपया उसे सीधे मेरे घर जाने को कह दीजिएगा!

नन्द

ठहरिए, कुछ तो और ठहरिए! आपके इस व्यवहार को, इस उपेक्षा को मैं समझ नहीं पा रहा हूँ। मुझमें आपको ऐसा क्या दोष दिखाई दिया कि आप मेरी प्रार्थना को इस प्रकार अस्वीकार कर रही हैं?

सुन्दरिका

स्पष्ट कथन के लिए मुझे क्षमा कीजिए! आप उसी शाक्य वंश के राजकुमार हैं, जिसके युवराज सिद्धार्थकुमार निरपराध महादेवी यशोधरा को छोड़कर जा चुके हैं और जिसके महाराज शुद्धोदन अपनी धर्मपत्नी पुण्यशीला प्रजावतीदेवी का परित्याग करके प्रव्रज्या ग्रहण करने का विचार कर रहे हैं।

नन्द

क्या यही तुम्हारा न्याय है सुन्दरिका! क्या केवल एक कुल में जन्म लेने ही से सब व्यक्ति एक-से हो जाते हैं? बहुत दिनों से मैं

सकता, जब तक उसमें किसी समझदार सहेली की सम्मति न ले ली गई हो !

सुन्दरिका

तुम तो ऐसी बिछुड़ीं, माधविका, कि पता ही न चला। तुम्हारे आने से बड़ी प्रसन्नता हो रही है ! कितनी देर से हम दोनों तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे थे !

माधविका

तुम अभीसे एक के बदले दो की भाषा बोलने लगीं ! तुम भले ही प्रतीक्षा कर रही हो; राजकुमार गौतम नन्द को क्या पड़ी थी कि मेरी प्रतीक्षा करते !

नन्द

आते ही आप मुझपर अकारण रोष क्यों प्रकट करने लगीं ? मैंने ऐसा कौन-सा अपराध किया है ?

माधविका

अपराध ? आपका सारा कुल नारी की अवहेलना का सर्वविदित अपराधी है।

नन्द

अब उस प्रश्न को न उठाइए ! उसपर बहुत विवाद हो चुका है और मैंने शपथपूर्वक प्रतिज्ञा की है कि मैं कभी इनका साथ न छोड़ूँगा, कभी भिक्षु न बनूँगा, कभी संन्यास न लूँगा।

माधविका

और इन्होंने आपकी प्रतिज्ञा पर विश्वास कर लिया ?

नन्द

यह तो इन्हींसे पूछिए !

माधविका

क्यों सखी ?

सुन्दरिका

मुझे इनपर पहले से विश्वास था सखी, क्योंकि, अपने-आप पर विश्वास था। इस विषय में अपने आत्म-विश्वास की बात मैं तुमसे पहले ही कह चुकी थी। फिर भी, परीक्षा के रूप में, प्रव्रज्या के प्रश्न को छेड़कर, मैं इनसे अभी-अभी वचन ले चुकी हूं। अब इनके और मेरे बीच में कोई अन्तर नहीं रह गया है।

माधविका

तब तो वास्तव मे बड़ी प्रसन्नता की बात है ! अब तो यह सोचना पड़ेगा कि इस मंगलमय अवसर पर हार्दिक प्रसन्नता प्रकट करने का क्या उपाय किया जाय।

नन्द

वास्तव मे इससे बढ़कर प्रसन्नता का क्या अवसर हो सकता है ! दो हृदयों का सदा के लिए एक-दूसरे के ममत्व के बंधन में बंधने का निश्चय करना जीवन की सबसे अधिक हर्षप्रद और सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण घटना होती है।

[दूसरी ओर से मृगया की वेशभूषा और सज्जा में देवदत्त का प्रवेश।]

देवदत्त

कौन किसके ममत्व के बंधन में बंध रहा है ? क्या इस वन में किसीका विवाह हो रहा है ?

नन्द

आओ भाई देवदत्त ! बहुत देर से हम लोग तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे थे। यही वह राजकुमारी सुन्दरिकादेवी हैं, जिनकी चर्चा मैं तुमसे किया करता था और यह इनकी सखी माधविकादेवी ! हम दोनों का विवाह तो अभी नहीं हुआ, पर, मैं और सुन्दरिका उसके लिए परस्पर वचनबद्ध अवश्य हो चुके हैं।

सकता, जब तक उसमें किसी समझदार सहेली की सम्मति न ले ली गई हो !

सुन्दरिका

तुम तो ऐसी बिछुड़ीं, माधविका, कि पता ही न चला। तुम्हारे आने से बड़ी प्रसन्नता हो रही है ! कितनी देर से हम दोनों तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे थे !

माधविका

तुम अभीसे एक के बदले दो की भाषा बोलने लगीं ! तुम भले ही प्रतीक्षा कर रही हो; राजकुमार गौतम नन्द को क्या पड़ी थी कि मेरी प्रतीक्षा करते !

नन्द

आते ही आप मुझपर अकारण रोष क्यों प्रकट करने लगीं ? मैंने ऐसा कौन-सा अपराध किया है ?

माधविका

अपराध ? आपका सारा कुल नारी की अवहेलना का सर्वविदित अपराधी है।

नन्द

अब उस प्रश्न को न उठाइए ! उसपर बहुत विवाद हो चुका है और मैंने शपथपूर्वक प्रतिज्ञा की है कि मैं कभी इनका साथ न छोड़ूँगा, कभी भिक्षु न बनूँगा, कभी संन्यास न लूँगा।

माधविका

और इन्होंने आपकी प्रतिज्ञा पर विश्वास कर लिया ?

नन्द

यह तो इन्हींसे पूछिए !

माधविका

क्यों सखी ?

सुन्दरिका

मुझे इनपर पहले से विश्वास था सखी, क्योंकि, अपने-आप पर विश्वास था। इस विषय मे अपने आत्म-विश्वास की बात मैं तुमसे पहले ही कह चुकी थी। फिर भी, परीक्षा के रूप मे, प्रव्रज्या के प्रश्न को छेड़कर, मैं इनसे अभी-अभी वचन ले चुकी हूं। अब इनके और मेरे बीच मे कोई अन्तर नही रह गया है।

माधविका

तब तो वास्तव मे बड़ी प्रसन्नता की बात है! अब तो यह सोचना पड़ेगा कि इस मंगलमय अवसर पर हार्दिक प्रसन्नता प्रकट करने का क्या उपाय किया जाय।

नन्द

वास्तव मे इससे बढ़कर प्रसन्नता का क्या अवसर हो सकता है! दो हृदयों का सदा के लिए एक-दूसरे के ममत्व के बंधन में बँधने का निश्चय करना जीवन की सबसे अधिक हर्षप्रद और सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण घटना होती है।

[दूसरी ओर से मृगया की वेशभूषा और सज्जा में देवदत्त का प्रवेश।]

देवदत्त

कौन किसके ममत्व के बधन मे बँध रहा है? क्या इस वन में किसीका विवाह हो रहा है?

नन्द

आओ भाई देवदत्त! बहुत देर से हम लोग तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे थे। यही वह राजकुमारी सुन्दरिकादेवी हैं, जिनकी चर्चा मैं तुमसे किया करता था और यह इनकी सखी माधविकादेवी! हम दोनों का विवाह तो अभी नही हुआ, पर, मैं और सुन्दरिका उसके लिए परस्पर वचनबद्ध अवश्य हो चुके हैं।

देवदत्त

बड़ी प्रसन्नता का विषय है। हार्दिक बधाई स्वीकार कीजिए ! और मिठाई ?

नन्द

इस निर्जन वन में मिठाई कहाँसे खिलाई जा सकती है ! कुछ फल मेरे पास बचे हैं, कुछ तुम्हारे पास भी अवश्य होंगे। उन्हीं सबको एकत्र करके, प्रीतिभोज के रूप में, एक सम्मिलित वनभोजन कर लिया जाय !

माधविका

हम लोगों को बड़े सस्ते में निवटा देना चाहते हैं राजकुमार ! मैं तो पहले ही कह चुकी हूँ कि शाक्यवंश के राजपुत्र बड़े चतुर होते हैं।

सुन्दरिका

और इस वन में संभव भी क्या है माधविका ? सोचो तो सही !

माधविका

तुम भी अभीसे राजकुमार नन्द का पक्ष लेने लगीं सुन्दरिका !

देवदत्त

विवाद की आवश्यकता नहीं है। प्रीतिभोज का प्राण है श्रद्धा और स्नेह। साधन तो गौण ही होते हैं। जो कुछ संभव हो, वही आदर और प्रेम के साथ स्वीकार किया जाना चाहिए।

[नन्द और देवदत्त अपने-अपने पास के फल निकालकर सामने रखते हैं। चारों फल खाते हैं।]

माधविका

अच्छा, अब स्वयंवर और विवाह कब होगा ?

सुन्दरिका

स्वयंवर तो हो चुका ।

माधविका

हो चुका ! कब ?

सुन्दरिका

अभी, कुछ ही पहले !

माधविका

कैसे ?

सुन्दरिका

स्वयंवर का आशय शक्ति, साहस और वीरता का प्रदर्शन ही तो होता है । राजकुमार नन्द वह प्रदर्शन अच्छे रूप में कर चुके हैं ।

माधविका

कर चुके हैं ! किस रूप में ?

सुन्दरिका

अभी वन में इन्होंने अकेले ही अपने खड्ग के एक ही प्रहार से भयानक सिंह के दो टुकड़े कर दिए थे !

नन्द

राजकुमारी सुन्दरिका स्त्री और पुरुष की असमानता की बड़ी विरोधिनी हैं । इन्हें एक पक्ष का स्वयंवर सहन न हुआ । पुरुष के साथ-साथ स्त्री के वीरता-प्रदर्शन को भी इन्होंने स्वयंवर का एक अंग समझा । इनका एक ही बाण उस सिंह के शरीर को वेधकर निकल गया । इस प्रकार इन्होंने अपनी परीक्षा भी दे दी !

माधविका

अच्छा, तो हम लोगों के आने के पहले यहां बहुत-कुछ हो चुका है ।

सुन्दरिका

अच्छा होता सखी, यदि तुम भी उस समय उस स्थान पर होतीं और अपनी आँखों से राजकुमार नन्द को खड्ग के एक ही प्रहार से सिंह के दो टुकड़े करते देख लेतीं ! कितना ओजस्वी और साहसपूर्ण था वह दृश्य !

माधविका

अच्छा, स्वयंवर तो हो गया; अब आप दोनों अपने शुभ विवाह का दृश्य कब दिखाएँगे ?

सुन्दरिका

विवाह यदि दो आत्माओं की स्थायी एकता की प्रतिज्ञा ही का नाम है, तब तो वह हो चुका है, किन्तु, यदि विवाह गुरुजनों के आशीर्वाद की छाया में कुटुम्बियों और इष्टमित्रों की उपस्थिति में होनेवाला उत्सव-आयोजन भी है, तो उसकी तिथि गुरुजन ही निश्चित करेंगे ।

देवदत्त

तब क्या हम लोग यह मान लें कि आप लोगों का वास्तविक विवाह तो वन-देवता के आशीर्वाद की छाया में इस विराट् प्रकृति के आँगन में हो ही चुका है, अब केवल औपचारिक आयोजन ही शेष है ?

नन्द

सत्य तो यही है ।

माधविका

तब तो आज की इस संध्या को हमें अधिक से अधिक आनन्दमय बनाने का प्रयत्न करना चाहिए ।

देवदत्त

फलों के प्रीतिभोज की मधुरता ने इसे बहुत-कुछ आनन्दमय बना ही दिया है ।

सुन्दरिका

इसमें एक आयोजन की वृद्धि और की जा सकती है, अनायास की जा सकती है।

नन्द

वह क्या ?

सुन्दरिका

माधविका का स्वाभाविक मधुर कंठसंगीत !

माधविका

यह तो तुम्हारा अन्याय है सुन्दरिका ! तुम्हें मालूम है कि तुम्हारे वीणावादन के अभाव में मैं कदापि नहीं गा सकती !

सुन्दरिका

विशेष अवस्था में विशेष व्यवस्था करनी ही पड़ती है। यहाँ वीणा कहाँ है, जो मैं बजाऊँ ! अब तो तुम्हें स्वीकार करना ही पड़ेगा सखी, कि मेरे वाद्यसंगीत से तुम्हारा कंठसंगीत अधिक महत्त्वपूर्ण है। मेरा वीणावादन प्रत्येक स्थिति में संभव नहीं हो सकता, किन्तु, तुम्हारा कंठसंगीत तो पक्षी के स्वर और निर्झर की *गति की भाँति प्रत्येक स्थान पर और प्रत्येक समय पर प्रवाहित हो* सकता है। अब देर न कर सखी ! एक गीत सुना दो !

माधविका

[गीत]

प्रेम, तुम्हारी जय जीवन में !
जय कण-कण में,
जय क्षण-क्षण में !
प्रेम, तुम्हारी जय जीवन में !

अनदेखे, अनजाने प्राणी
पल में अपने हो जाते हैं;
हृदय हृदय में तन्मय होते,
प्राण प्राण में खो जाते हैं !
एक नया मधुमास महकने
लगता है जग के आँगन में !
प्रेम, तुम्हारी जय जीवन में !

जय तन-तन में,
जय मन-मन में !
प्रेम, तुम्हारी जय जीवन में !
जग को तुमने स्वर्ग बनाया,
सुगम बनाया जीवन-पथ को,
वाणी दी उर के युग-युग के
संचित मधुर रहस्य अकथ को !
मानव में मनुजत्व तुम्हींने
भरा, अमृत निर्मल यौवन में !
प्रेम, तुम्हारी जय जीवन में !

[पट-परिवर्तन ।]

दूसरा दृश्य

[पाटलिपुत्र । शुद्धोदन का प्रासाद । मध्याह्न]

[शुद्धोदन तथा प्रजावती बातचीत कर रहे हैं ।]

शुद्धोदन

समय को बदलते देर नहीं लगती प्रजावती ! एक दिन था कि लोग मुझसे कहते थे कि महाराज शुद्धोदन, आप बड़े सौभाग्यशाली हैं ! महाराज दशरथ के राज्य के समान विशाल राज्य के आप स्वामी हैं, राम और लक्ष्मण के समान आपके पुत्र सिद्धार्थ और नन्द हैं और कौशल्या और सुमित्रा जैसी आपकी रानियाँ महामाया और प्रजावती हैं ! पर, अचानक समय बदल गया । अब मेरी कैसी बुरी दशा है महारानी ! आज मेरे समान अभागा और कौन हो

प्रजावती

संयम के लिए आप प्रसिद्ध रहे हैं महाराज ! आपका धैर्य विशाल चट्टान के समान रहा है। समय के बुरे से बुरे परिवर्तन के आघात से भी उसे अटूट रहना चाहिए।

शुद्धोदन

ऐसे महाराज दशरथ की कल्पना करो प्रिये, जिनकी कौशल्या राम को जन्म देते ही दिवंगत हो गई हो और जिनका राम केवल चौदह वर्षों के लिए ही नहीं, सदा के लिए वन को चला गया हो। महारानी महामाया के देहान्त और युवराज सिद्धार्थकुमार के प्रव्रज्याग्रहण से मेरी ऐसी ही दशा हो गई है। महाराज दशरथ भाग्यशाली थे कि राम के वनगमन पर देह के बन्धन से छूट गए थे, मैं भाग्यहीन हूँ कि सिद्धार्थ के वियोग में भी जी रहा हूँ। मेरे धैर्य का आधार टूट रहा है। प्रजावती, तुम मुझे कैसे सँभालोगी ?

प्रजावती

अपनेको स्वयं आप सँभालेंगे स्वामी ! और किसमें इतनी शक्ति है ? इसमें संदेह नहीं कि समय परिवर्तनशील है, पर, उसकी अनुकूलता और प्रतिकूलता चक्र की तरह घूमती रहती है। यदि आज हमारा समय हमारे प्रतिकूल है, तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि कल वह हमारे अनुकूल न होगा।

शुद्धोदन

अब मैं किसके सहारे आशा का भवन खड़ा करूँ प्रजावती ?

प्रजावती

आपका पौत्र राहुल आपकी आशा का आधार बन सकता है महाराज !

शुद्धोदन

राहुल अभी बहुत छोटा है।

प्रजावती

तब आपका पुत्र नन्द है।

शुद्धोदन

हाँ, नन्द अवश्य है! तुमने नन्द को जन्म देकर मुझे एक अच्छा आधार प्रदान किया है। सन्यास लेने के पहले नन्द को राज्य सौंपकर मैं निश्चिन्त तो होना चाहता हूँ, पर, जब तक उसका विवाह न हो जाय, तब तक उसके राज्याभिषेक का आयोजन करना मुझे उचित नहीं प्रतीत होता। मैं सोचता हूँ कि कहीं ऐसा न हो कि नन्द के मन में भी अपने भाई सिद्धार्थ के अनुकरण की इच्छा उत्पन्न हो जाय। यदि ऐसा हुआ, तो फिर राज्य का भार कौन सँभालेगा?

प्रजावती

नन्द के लक्षण तो ऐसे नहीं दिखाई देते। मैं अपने दोनों बेटों को अच्छी तरह जानती हूँ। मैं जानती हूँ कि नन्द क्या है और सिद्धार्थ क्या है। यदि आप उचित समझें, तो नन्द का विवाह कर सकते हैं। सिद्धार्थ के वियोग तथा आपके संभावित वियोग के कारण मेरा जी भी घर में नहीं लग सकता। यशोधरा भी अपने पति के वियोग में दुखी रहती है। अब इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं रह गया है कि मैं नन्द की बहू को घर सौंप दूँ। मुझे भी अपना कल्याण इसी-में दिखाई देता है कि मैं भी सिद्धार्थ के मार्ग पर चलूँ। बहन महामाया के आकस्मिक देहांत के कारण उनके पुत्र सिद्धार्थ पर मेरी ममता इतनी बढ़ गई थी कि मैंने उसे अपने पेट के बेटे से भी अधिक प्रेम से पाला था। जबसे सिद्धार्थ मुझे छोड़कर गया है, मेरे हृदय में सदा एक हूक-सी उठा करती है। सिद्धार्थ का अभाव नन्द से पूर्ण नहीं हो सकता।

शुद्धोदन

मुझे धैर्य का उपदेश देनेवाली तुम! तुम भी विचलित हो रही हो!

प्रजावती

(कारण कुछ भी हो, वर्तमान अनिश्चित स्थिति का शीघ्र ही अन्त होना चाहिए, अन्यथा, हमारा सारा कार्यक्रम बिगड़ जायगा।)

शुद्धोदन

इसमें क्या संदेह है !

[देवदत्त का प्रवेश।]

देवदत्त

प्रणाम महाराज ! वन्दन महारानी !

शुद्धोदन

शतायु हो देवदत्त !

प्रजावती

चिरजीवी हो आयुष्मान् !

शुद्धोदन

क्यों राजकुमार देवदत्त, क्या तुम उस दिन नन्द के साथ मृगया के लिए वन में गए थे ?

देवदत्त

गया तो था महाराज ! कहिए, क्या आज्ञा है ?

शुद्धोदन

आयुष्मान्, तुमसे मुझे एक अत्यन्त महत्त्व का रहस्य जानना है।

देवदत्त

आज्ञा कीजिए महाराज ! यदि मुझे कुछ ज्ञात होगा, तो अवश्य सेवा में निवेदन करूँगा।

शुद्धोदन

बात यह है, देवदत्त, कि मेरी इच्छा अब निवृत्त होने की है। महारानी प्रजावती भी प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहती हैं। हम लोग

राज्यकार्य का भार नन्द पर और गृह-व्यवस्था का भार नन्द की भावी वहू पर डालकर निश्चिन्त होना चाहते है।

देवदत्त

इसमे रहस्य की क्या बात है महाराज ! यह तो आप दोनों की इच्छा का प्रश्न है।

शुद्धोदन

हमारी इस इच्छा मे बाधा उत्पन्न होती दिखाई दे रही है। इसीलिए, तुम्हारी सहायता की आवश्यकता हुई है।

देवदत्त

मेरे योग्य सेवा मुझे बताइए महाराज !

शुद्धोदन

नन्द का विवाह राजकुमारी सुन्दरिका से करने का हमारा विचार था। आयुष्मान् नन्द भी इससे सहमत था। सुन्दरिका के पिता की अनुमति भी मिल गई थी। उन्होने स्वयंवर की तिथि निश्चित करानी चाही थी। नन्द इसके लिए भी तत्पर था। पर, उस दिन की मृगया से लौटने के बाद जब तिथि निश्चित करने के प्रश्न पर उसका परामर्श चाहा गया, तब उसने स्वयंवर के लिए जाना अस्वीकार कर दिया।

देवदत्त

नन्द ने क्या कहा ?

शुद्धोदन

उसने कहा कि स्वयंवर की आवश्यकता नहीं है।

देवदत्त

आपने इसका अर्थ यह लगाया कि राजकुमार नन्द मृगया के लिए जब वन मे गए, तब वहाँ कोई ऐसी रहस्यमय घटना हो गई, जिसके कारण उन्होने राजकुमारी सुन्दरिका से विवाह न करने

प्रजावती

कारण कुछ भी हो, वर्तमान अनिश्चित स्थिति का शीघ्र ही अन्त होना चाहिए, अन्यथा, हमारा सारा कार्यक्रम बिगड़ जायगा ।

शुद्धोदन

इसमें क्या संदेह है !

[देवदत्त का प्रवेश ।]

देवदत्त

प्रणाम महाराज ! वन्दन महारानी !

शुद्धोदन

शतायु हो देवदत्त !

प्रजावती

चिरजीवी हो आयुष्मान् !

शुद्धोदन

क्यों राजकुमार देवदत्त, क्या तुम उस दिन नन्द के साथ मृगया के लिए वन में गए थे ?

देवदत्त

गया तो था महाराज ! कहिए, क्या आज्ञा है ?

शुद्धोदन

आयुष्मान्, तुमसे मुझे एक अत्यन्त महत्त्व का रहस्य जानना है ।

देवदत्त

आज्ञा कीजिए महाराज ! यदि मुझे कुछ ज्ञात होगा, तो अवश्य सेवा में निवेदन करूँगा ।

शुद्धोदन

बात यह है, देवदत्त, कि मेरी इच्छा अब निवृत्त होने की है । महारानी प्रजावती भी प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहती हैं । हम लोग

कर लिया और उस घटना का रहस्य जानने के लिए आपने मुझे, नन्द के मृगया के साथी के नाते, यहाँ बुलाया है। यही बात है न ?

शुद्धोदन

बात तो यही है।

देवदत्त

तो सुनिए महाराज ! वन में एक रहस्यमय घटना हुई तो थी।

प्रजावती

हुई थी ! ऐसी क्या घटना हुई थी ?

शुद्धोदन

वन में रहस्यमय घटना हुई और तुम दोनों में से किसीने भी उसकी सूचना मुझे देने की आवश्यकता नहीं समझी !

देवदत्त

क्षमा कीजिए महाराज ! केवल संकोच के कारण आपकी सेवा में उस घटना का वृत्तान्त निवेदित न किया जा सका। और फिर वह घटना आपके संकल्प के प्रतिकूल न थी। वह तो आपकी इच्छा के अनुकूल ही थी।

शुद्धोदन

इच्छा के अनुकूल ! ऐसी क्या घटना हुई थी ?

देवदत्त

वन में मृगया के लिए इधर से गए हुए राजकुमार नन्द और उधर से आई हुई राजकुमारी सुन्दरिका की आपस में भेंट और बात-चीत हो गई थी। सिंह के आखेट में दोनों के सामने एक-दूसरे की शक्ति, साहस तथा वीरता का प्रदर्शन भी हो गया था। उसके फल-स्वरूप स्वयंवर की आवश्यकता नहीं रह गई थी। यही अन्तिम बात राजकुमार नन्द ने आपसे कही थी !

प्रजावती

यह बात थी ! हमलोग न जाने किस कुशंका के जाल में फँस गए थे !

शुद्धोदन

तब क्या दोनों स्वयंवर के बिना ही विवाह करने को प्रस्तुत हो गए है ?

देवदत्त

इसमें क्या सन्देह है ! दोनों वचन-बद्ध भी हो चुके है। यह इसलिए नही हुआ कि दोनो अपने गुरुजनों से विद्रोह करना चाहते है, वरन्, इसलिए हुआ कि दिनों को यह ज्ञात हो चुका था कि दोनों के माता-पिता भी पहले से उनके विवाह-सम्बन्ध के लिए प्रयत्न कर रहे थे।

प्रजावती

यह तो है ही ! दोनो बडे सुशील हैं।

शुद्धोदन

अच्छा देवदत्त, तुम नन्द को समझा-बुझाकर भेजो कि वह शीघ्र यहाँ आकर हमें इस विवाह की स्पष्ट स्वीकृति दे जाय। इस विषय में अब न तो सकोच की आवश्यकता है और न विलम्ब की।

देवदत्त

महाराजा का आज्ञापालन होगा । प्रणाम !

[देवदत्त का प्रस्थान।]

प्रजावती

कभी-कभी मनुष्य को कैसा भ्रम हो जाता है ! नन्द ने किस आशय से स्वयंवर को अनावश्यक बताया था और हम लोगों ने उसका क्या आशय समझ लिया ! सुन्दरिका बडी सुन्दर, सुशील और वीर लड़की है। इसमें कोई सन्देह नही कि इससे विवाह कर लेने के बाद नन्द शाक्य वंश के राज्य को अक्षुण्ण रख सकेगा।

शुद्धोदन

इसलिए, पहले विवाह और उसके बाद राज्याभिषेक ! यदि नन्द हमारे परामर्श के अनुसार आचरण करना स्वीकार कर ले, तो हम दोनों कृत-कृत्य हो जायँ, निश्चिन्त हो जायँ !

[नन्द का प्रवेश ।]

नन्द

प्रणाम पिताजी ! माताजी प्रणाम !

शुद्धोदन

जीवित रहो !

प्रजावती

यशस्वी हो !

नन्द

तीर्थस्वरूप माता-पिता का आशीर्वाद जिस पुत्र को प्राप्त रहता है, उसे और किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं रहती ।

शुद्धोदन

सुनो बेटा नन्द, राहुल अभी बहुत छोटा है । सिद्धार्थ गृहत्याग कर ही गए । यशोधरा सिद्धार्थ के वियोग में दुखी रहती है । अब शाक्य-वंश के राज्य और गृह-व्यवस्था के भविष्य का सारा भार तुम और तुम्हारी भावी बहू की आशा ही के आधार पर निर्भर है । अतः तुमको हमारा परामर्श स्वीकार करके शीघ्र ही विवाह और राज्याभिषेक का उत्तरदायित्व ग्रहण कर लेना चाहिए ।

प्रजावती

स्वीकार कर लो बेटा, हमारा अनुरोध स्वीकार कर लो !

नन्द

आपके इन शब्दों से कुछ अविश्वास की-सी ध्वनि निकलती है ।

यह मेरा कितना बड़ा दुर्भाग्य है कि मुझे जन्म देनेवाले माता-पिता भी मुझपर अविश्वास करते हैं। मैंने आज तक आप लोगों के किसी भी अनुरोध को कभी अस्वीकार नहीं किया, फिर भी, आपके मन में शंका है कि मैं आपकी आज्ञा की अवहेलना करूँगा। तथागत गौतम बुद्ध ने संसार को शान्ति दी है, उपसम्पदा दी है, पर, मेरे लिए तो उनका भाई होना ही एक अभिशाप बन गया है।

शुद्धोदन

अभिशाप ! अभिशाप क्यों ?

नन्द

अभिशाप इसलिए कि जिसे देखो, वही यह सदेह करता है कि मैं उनकी भाँति ही भिक्षु बन जाऊँगा। मैं अपना हृदय चीरकर किस-किसको दिखाऊँ और कैसे दिखाऊँ ? मैं यह कैसे प्रमाणित करूँ कि मैं सामान्य हूँ, महान् नहीं; नन्द हूँ, सिद्धार्थ नहीं ? स्वयंवर को अस्वीकार करने का कारण आपको देवदत्त ने बता ही दिया है। संकोच ही के मारे मैं वास्तविक कारण न बता सका था। इतनी-सी भूल का इतना बड़ा दण्ड तो मुझे न मिलना चाहिए कि मैं आज्ञा की अवहेलना करनेवाला कुपुत्र समझा जाऊँ !

शुद्धोदन

क्षुब्ध न हो बेटा ! हमें भ्रम हो गया था। अब हमें कोई सन्देह नहीं रहा कि तुम हमारे दग्ध हृदय को शीतल करोगे, हमारी आशा-लता को फिर से हरी-भरी करोगे ! हम दोनों आज ही सारी व्यवस्था का आयोजन करते हैं। शीघ्र ही राजकुमारी सुन्दरिका से तुम्हारा विवाह होगा। विवाह के बाद ही तुम्हारा राज्याभिषेक हो जायगा।

नन्द

जैसी आपकी इच्छा ! अच्छा, अब मुझे आज्ञा दीं

प्रसिद्ध संगीतज्ञ आए हुए हैं, उनके स्वागत-सत्कार का आयोजन करना है। प्रणाम !

शुद्धोदन

शतायु, सुखी और यशस्वी हो !

[नन्द का प्रस्थान ।]

प्रजावती

कितना भोला और भला है यह नन्द !

शुद्धोदन

आज की यह संध्या शाक्यवंश के जीवन में एक नया प्रभात लाना चाहती है। इससे बढ़कर हम दोनों का सौभाग्य और क्या हो सकता है कि नन्द कपिलवस्तु के राज्य की और सुन्दरिका अन्तःपुर के प्रासादों की व्यवस्था सँभाले। दोनों मिलकर आयुष्मान् राहुल का, पुत्र की भाँति, लालन-पालन करें और हम तीनों, मैं, तुम और यशोधरा, निश्चिन्त होकर, तथागत के आदर्शों के अनुसार, निर्वाण की खोज में अलग-अलग दिशाओं में प्रव्रजन करें !

प्रजावती

ऐसा ही होगा नाथ !

शुद्धोदन

यदि ऐसा ही हुआ, तो हमारे जीवन की निराशा की मरुभूमि में आशा के हरे-भरे अंकुर लहलहाएँगे। हम धन्य हो जायँगे प्रिये, कृत-कृत्य हो जायँगे। प्राणप्रिय पुत्र के विवाह और राज्याभिषेक के सौभाग्य का सुख ! इतना बड़ा वैभव ! कुछ समझ ही में नहीं आता कि उसे हम कैसे बटोरें, कैसे सँभालें ! अविरत उत्सव-आयोजनों का उत्साह ही हमें इतने बड़े सुख को सँभालने की शक्ति दे सकता है।

प्रजावती

पहले कुछ समय विश्राम कर लीजिए महाराज ! फिर सारी व्यवस्थाओं के सम्बन्ध में उचित आज्ञाएँ दीजिएगा।

शुद्धोदन

विश्राम ! अब विश्राम के लिए अवकाश कहाँ है ? बड़े भाग्य से ऐसा अवसर मिलता है। मैं अभी प्रधान अमात्य को बुलाकर सारी व्यवस्था कराता हूँ। इस अवसर पर मैं अपने सारे साधनों का उपयोग करना चाहता हूँ, नन्द का विवाह और राज्याभिषेक ऐसी धूम-धाम से होना चाहिए कि कपिलवस्तु में नया जीवन उत्पन्न हो जाय, घर-घर में नए उत्साह की लहर दौड़ जाय और सारे भारत में शाक्यवंश के वैभव का यश-सौरभ फैल जाय।

[पट-परिवर्तन।]

प्रसिद्ध संगीतज्ञ आए हुए हैं, उनके स्वागत-सत्कार का आयोजन करना है। प्रणाम !

शुद्धोदन

शतायु, सुखी और यशस्वी हो !

[नन्द का प्रस्थान ।]

प्रजावती

कितना भोला और भला है यह नन्द !

शुद्धोदन

आज की यह संध्या शाक्यवंश के जीवन में एक नया प्रभात लाना चाहती है। इससे बढ़कर हम दोनों का सौभाग्य और क्या हो सकता है कि नन्द कपिलवस्तु के राज्य की और सुन्दरिका अन्तःपुर के प्रासादों की व्यवस्था सँभाले। दोनों मिलकर आयुष्मान् राहुल का, पुत्र की भाँति, लालन-पालन करें और हम तीनों, मैं, तुम और यशोधरा, निश्चिन्त होकर, तथागत के आदर्शों के अनुसार, निर्वाण की खोज में अलग-अलग दिशाओं में प्रव्रजन करें !

प्रजावती

ऐसा ही होगा नाथ !

शुद्धोदन

यदि ऐसा ही हुआ, तो हमारे जीवन की निराशा की मरुभूमि में आशा के हरे-भरे अंकुर लहलहाएँगे। हम धन्य हो जायँगे प्रिये, कृत-कृत्य हो जायँगे। प्राणप्रिय पुत्र के विवाह और राज्याभिषेक के सौभाग्य का सुख ! इतना बड़ा वैभव ! कुछ समझ ही में नहीं आता कि उसे हम कैसे बटोरें, कैसे सँभालें ! अविरत उत्सव-आयोजनों का उत्साह ही हमें इतने बड़े सुख को सँभालने की शक्ति दे सकता है।

प्रजावती

पहले कुछ समय विश्राम कर लीजिए महाराज ! फिर सारी व्यवस्थाओं के सम्बन्ध में उचित आज्ञाएँ दीजिएगा।

शुद्धोदन

विश्राम ! अब विश्राम के लिए अवकाश कहाँ है ? बड़े भाग्य से ऐसा अवसर मिलता है । मैं अभी प्रधान अमात्य को बुलाकर सारी व्यवस्था कराता हूँ । इस अवसर पर मैं अपने सारे साधनों का उपयोग करना चाहता हूँ, नन्द का विवाह और राज्याभिषेक ऐसी धूम-धाम से होना चाहिए कि कपिलवस्तु में नया जीवन उत्पन्न हो जाय, घर-घर में नए उत्साह की लहर दौड़ जाय और सारे भारत में शाक्यवंश के वैभव का यश-सौरभ फैल जाय ।

[पट-परिवर्तन ।]

तीसरा दृश्य

[कपिलवस्तु। कुम्भक का वासस्थान। प्रातःकाल।]

[कुम्भक का प्रसन्न-मुद्रा में प्रवेश।]

कुम्भक

अरी भद्रा! कहाँ हो? इधर तो आओ! इधर तो आओ श्रीमती कुण्डेश्वरीदेवी!

[नेपथ्य में कुण्डेश्वरी का उत्तर सुनाई देता है।]

कुण्डेश्वरी

क्या बात है? अभी आई! अभी आई!

कुम्भक

अरे जल्द आओ, जल्द!

[कुण्डेश्वरी का प्रवेश।]

कुण्डेश्वरी

लो आ गई ! कहो क्या बात है ? क्यों चिल्ला-चिल्लाकर घर गुंजाए दे रहे हो ?

कुम्भक

हर्ष के आवेग में नटराज शंकर नृत्य किया करते थे और योगिराज कपिल शीर्षासन ! मैं भी आज हर्ष के मारे फूला नहीं समा रहा हूं। कुछ समझ ही में नहीं आता कि इस समय मैं क्या करूं ! नाचूं या सिर के बल खड़ा हो जाऊं ?

कुण्डेश्वरी

क्यों, क्यों ? ऐसी क्या बात है ?

कुम्भक

बात यह है कि मुझे अत्यन्त महान् हर्ष के अनेक समाचार मिले हैं। इस अवसर पर यदि मैं किसी प्रकार का हर्ष-प्रकाशन न करूँगा, तो पागल हो जाऊँगा। हर्ष का प्रकाशन तो मुझे करना ही पड़ेगा, अभी करना पड़ेगा और अच्छे ढंग से करना पड़ेगा।

कुण्डेश्वरी

कैसे हर्ष के समाचार ? कैसा हर्ष ?

कुम्भक

अरी भद्रा, तुममें कब समझ आवेगी ? यदि तुममें मौलिक बुद्धि का अभाव है, तो श्रद्धा के साथ अनुकरण ही करती जाओ ! जब मैं कह रहा हूं "अत्यन्त महान् हर्ष", तब तुम केवल "हर्ष" क्यों कह रही हो ? हर्ष मत कहो; महान् हर्ष कहो, अत्यन्त महान् हर्ष ! प्रत्येक वस्तु की कोटि के अनुसार उसका विशेषण निश्चित करना पड़ता है। यह अत्यंत तीव्र और सूक्ष्म बुद्धि का काम है।

कुण्डेश्वरी

कुछ बताओ तो सही कि क्या हुआ !

कुम्भक

हुआ नहीं, होनेवाला है। अरे नहीं, होनेवाला नहीं, होनेवाले हैं। एक नहीं, दो-दो आयोजन होनेवाले हैं। साधारण नहीं, महान्, महान् नहीं, अत्यन्त महान्, दो-दो आयोजन होनेवाले हैं ! पहले महाराज शुद्धोदन के राजकुमार नन्द का विवाह और फिर उनका राज्याभिषेक ! एक के बाद एक, दो-दो महामहोत्सव ! अरी भद्रा, क्या बताऊँ ! ऐसे भाग्य खुले हैं कि किसीके न खुले होंगे !

कुण्डेश्वरी

कब होगा विवाह ?

कुम्भक

शीघ्र से शीघ्र ! तथागत गौतम बुद्ध जब तक सारे संसार को पूर्ण रूप से भिक्षु नहीं बना लेते, तब तक गृहस्थ इस पृथ्वी पर रहेंगे ही; जब तक गृहस्थाश्रम का अस्तित्व है, विवाह भी होते ही रहेंगे; जब तक विवाह होते रहेंगे, बालबच्चे भी होंगे ही और जब तक यह सब होता रहेगा, तब तक भाँति-भाँति के आनन्दउल्लास, समारोह-सम्मेलन, उत्सव-आयोजन भी होते ही रहेंगे ! इसीको यदि दार्शनिक भाषा में कहूँ, तो यों कह सकता हूँ कि मेरे पूर्वजों ने अपने जीवन में एक महान् दार्शनिक सिद्धान्त की उपलब्धि की थी।

कुण्डेश्वरी

वह क्या ?

कुम्भक

वह यह कि मनुष्य अमर है, मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ अमर हैं; फलस्वरूप, विवाह अमर है, गृहस्थाश्रम अमर है और बालकों के जन्म भी अमर हैं।

कुण्डेश्वरी

की होगी कोई उपलब्धि ! उससे हमें क्या लाभ हुआ ?

कुम्भक

लाभ ? लाभ ही नहीं, महान् लाभ हुआ है ! उन्होंने इसी महान् दार्शनिक सिद्धान्त के साथ अपने वंशजों के जीवन और जीविका का अटूट सूत्र बांध दिया है।

कुण्डेश्वरी

वह कैसे ?

कुम्भक

ऐसे कि उन्होंने अपनी महान् बुद्धिमत्ता के द्वारा अपने और अपने वंशजों के लिए पुरोहित का व्यवसाय चुन लिया। अब स्थिति यह है कि जब तक संसार अमर है, तब तक मनुष्य अमर है, जब तक मनुष्य अमर है, तब तक गृहस्थाश्रम अमर है, जब तक गृहस्थाश्रम अमर है, तब तक विवाह और पुत्रजन्म अमर हैं, तब तक विवाह और पुत्रजन्म अमर हैं, तब तक पुरोहित अमर है, पुरोहित का व्यवसाय अमर है और जबतक पुरोहित का व्यवसाय अमर है, तब तक पुरोहित, उसकी पत्नी और उसके पुत्रपुत्रियों की विशाल सेना कभी भूखों नहीं मर सकती।

कुण्डेश्वरी

अच्छी शृंखला मिलाई !

कुम्भक

अरी भद्रा ! यह शृंखला साधारण नहीं है। इस महान् शृंखला के लिए हमें अपने पूर्वजों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए और उनकी पवित्र स्मृति में जीवन-भर बारबार दंडवत् प्रणाम करते रहना चाहिए ! करो दंडवत् प्रणाम ! मैं भी करता हूं, तुम भी करो ! उन महान् पूर्वजों का भक्तिभाव से स्मरण करो !

[कुम्भक लम्बे लेटकर दंडवत् प्रणाम करते हैं।]

कुण्डेश्वरी

यह सब नाटक तुम्हींको शोभा देता है। मुझे इसके लिए अवकाश नहीं है। मुझे रसोई बनानी है।

कुम्भक

जिन पूर्वजों की कृपा से इतना द्रव्य मिलता जा रहा है कि घर में प्रतिदिन दो बार रसोई बनाई जा सके, उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए प्रणाम करने में भी कृपणता दिखाती हो ! अरी भद्रा, तुम कब सज्जनों के संस्कार सीखोगी ?

कुण्डेश्वरी

अपनी सज्जनता अपने पास रखो ! मुझे काम है। मैं जाती हूँ !

कुम्भक

सावधान कुण्डेश्वरी ! हम स्पष्ट कहे देते हैं। यदि तुम हमारी इसी प्रकार अवहेलना करती रहोगी, तो हम केश कटवाकर और काषायवस्त्र पहनकर भिक्षु बन जायँगे और सीधे तथागत गौतम बुद्ध के धर्मसंघ में जा मिलेंगे। फिर तुम कहाँसे धन पाकर रसोई बनाओगी और कहाँसे अपनी विशाल सन्तानसेना को खिलाओगी ?

कुण्डेश्वरी

क्या सन्तान मेरी ही है, तुम्हारी नहीं ? क्या मैंने ही तुम्हारी संतान को रसोई बना-बनाकर खिलाने का ठेका लिया है ? मैं ऐसी धमकी में आनेवाली नहीं हूँ। यदि तुम भिक्षु बनोगे, तो मैं भी तुम्हारे घर में आग लगाकर भिक्षुणी बन जाऊँगी। मैं वहाँ भी तुम्हारा पीछा न छोड़ूँगी।

कुम्भक

वहाँ भी मेरा पीछा न छोड़ोगी ? पर, गौतम बुद्ध बड़े दयालु हैं। उन्होंने हम-जैसे पतियों पर दया करके स्त्रियों के लिए अपने भिक्षुसंघ का द्वार ही बन्द कर रखा है। तुम्हें वह भिक्षुणी बनने की अनुमति ही न देंगे। फिर क्या करोगी ?

यदि ऐसा हुआ, तो मैं भिक्षुणी बने बिना ही, तुम्हारे पीछे-पीछे, तुम्हारे पाखंड का भंडाफोड़ करती फिरूँगी। जहाँ-जहाँ तुम जाओगे, वहाँ-वहाँ जाकर तुम्हारी वास्तविकता जनता, भिक्षुओं और स्वयं तथागत गौतम बुद्ध के सामने रखूँगी!

कुम्भक

अरी भद्रा! तुम बड़ी प्रचंड हो! मुझे विश्वास हो गया कि तुम मेरा किसी भी प्रकार पिंड न छोड़ोगी! मेरे भाग्य में सदा तुम्हारे बन्धन में बँधा रहना ही लिखा है। उससे छूटने का कोई मार्ग ही नहीं है! जब जीवनभर तुम्हारे साथ रहना ही पड़ेगा, तब जीवन को क्यों न अधिक से अधिक सुखमय बनाने का यत्न करूँ? अधिक से अधिक सम्पन्न हुए बिना अधिक से अधिक सुख मिलना कठिन है। इसलिए, धन प्राप्त करने के नित्य-नवीन उपाय सोचने पड़ेंगे। अच्छा देवी, एक काम करो! आजकल तरुण पुरुषों में भिक्षु बनने की प्रथा बहुत प्रबल होती जा रही है। उनकी पत्नियाँ बहुत दुखी हैं। तुम उनका एक महिला-महाविद्यालय खोलकर उसकी प्रधान आचार्या बन जाओ!

कुण्डेश्वरी

महाविद्यालय कैसा?

कुम्भक

एक ऐसा महाविद्यालय, जो स्त्रियों को विधिवत् उन उपायों की शिक्षा दे, जिनसे पतियों को भिक्षु बनने से रोका जा सके। तुमसे बढ़कर इस विद्या में निपुण और कौन हो सकती है? तुम सब तरह से उसकी प्रधान आचार्या बनने योग्य हो। उसकी विद्यार्थिनियों की संख्या इन दिनों ऐसे बढ़ेगी, जैसे वर्षाऋतु में केंचुए बढ़ते हैं।

कुण्डेश्वरी

पर, उससे मुझे क्या लाभ होगा?

कुम्भक

लाभ ? महालाभ होगा ! संसार का सबसे महत्त्वपूर्ण लाभ, द्रव्य-ाभ ! तुम्हारी सैंकड़ों शिष्याएँ जब सैंकड़ों मुद्राएँ प्रतिमास दक्षिणा तुम्हें दिया करेंगी, तब तुम मुझसे अधिक कमाई करने लगोगी। रिवार की प्रधान सदस्य उस समय तुम गिनी जाया करोगी, मैं हीं। इस संसार का नियम ही यह है कि इसमें जो जितना अधिक न कमाता है, उसका उतना ही अधिक सम्मान होता है। तुम अपने स महाविद्यालय की प्रधान संरक्षिका के पद के लिए भी कपिलवस्तु ो में शीघ्र ही एक सम्पन्न महिला पा सकोगी।

कुण्डेश्वरी

वह कौन ?

कुम्भक

राजकुमारी सुन्दरिका, जो शीघ्र ही कपिलवस्तु के भावी शासक राजकुमार गौतम नन्द की रानी बननेवाली हैं ! उनके भावी जीवन का मुख्य कार्यक्रम अपने पति नन्द को भिक्षु बनने से रोकने की निरन्तर चेष्टा करते रहना ही होगा और तुम्हें पति को गृहस्थी की रस्सी में निरन्तर बाँधे रहने के ऐसे-ऐसे गुर याद हैं कि उन्हें बता-बताकर तुम सुन्दरिका देवी को सदा अपनी मुट्ठी में रख सकोगी !

कुण्डेश्वरी

क्या, सचमुच, मैं इस प्रकार तुमसे अधिक धन कमाने लगूँगी ?

कुम्भक

निस्सन्देह ! समय की गति इस समय कुछ ऐसी ही है। इस परिवर्तनशील संसार में कभी कोई व्यवसाय उन्नति करता है, तो कभी कोई। एक युग था कि पुरोहित का व्यवसाय इस क्षेत्र में बड़े उच्च शिखर पर था। इधर गौतम बुद्ध के धर्मप्रचार ने पशुबलि, कर्मकांड और यज्ञ के वैभव के प्रति जनता और शासकों को अत्यन्त

उदासीन बना दिया है। इसके फलस्वरूप बड़े-बड़े प्रचंड कर्मकांडी पुरोहित आजकल भूखों मरने लग गए हैं। किन्तु, इसने एक नए व्यवसाय के उत्कर्ष की संभावना पैदा कर दी है। बुद्धिमान् लोग समय के परिवर्तन को देखकर अपना व्यवसाय बदल देते हैं। अब तुम्हें भिक्षुत्व-निवारक-महिलाविद्यापीठ खोलकर दोनों हाथों से धन बटोरना आरम्भ कर देना चाहिए।

कुण्डेश्वरी

क्या सचमुच मेरा विद्यालय चल निकलेगा ?

कुम्भक

क्यों नहीं ? पर, यह निश्चित न समझ बैठना कि कमाई में मैं तुमसे पिछड़ ही जाऊँगा। भविष्य में तुम्हारे लड़के तुमसे इस विषय में भले ही हार जायँ, मैं तो कमाई के सम्बन्ध में तुमसे सरलता से हार माननेवाला नहीं हूँ। अपने जीवनकाल तक के लिए तो मैंने अपना प्रबन्ध कर ही लिया है। मेरे जीवनकाल में तो मेरे मध्यम-मार्ग के सिद्धान्त के पाश में से निकलना धनिकों और शासकों के वश की बात नहीं है। मैंने कर्मकांड और अहिंसा के समझौते का स्वर्ण-सिद्धान्त ढूँढ़ निकाला है। वह इस युग का सबसे महान् दार्शनिक सिद्धान्त है। उसने मुझ श्रीमान् पंडित कुम्भकाचार्य शर्मा मध्यम-मार्गी का देशभर में डंका बजा दिया है, डंका !

कुण्डेश्वरी

तो क्या तुम्हारा पुरोहित का व्यवसाय भी चलता ही रहेगा ?

कुम्भक

अपने मध्यम मार्ग के सहारे मेरा व्यवसाय ऐसा चलेगा कि सारा संसार भौचक होकर देखता रहेगा। ऐसा चलेगा, जैसे चक्रवर्ती सम्राट् का सोने का खरा सिक्का चलता है। कुम्भकाचार्य की विकट खोपड़ी का लोहा संसार को मानना ही पड़ेगा।

कुण्डेश्वरी

क्या एक पुरोहित के रूप में राजकुमार नन्द के विवाह और राज्याभिषेक में तुम्हें सचमुच वहुत धन मिलने की आशा है ?

कुम्भक

अरी भद्रा ! मुझे उन दोनों आयोजनों में इतना धन मिलेगा कि घर भर जायगा, घर ! इतनी मुद्राएँ घर में आयँगी कि तुम्हें चोरी की शंका से रात-रातभर जागना पड़ा करेगा ! इतने लड्डू आयँगे कि उनके लिए कई नए हंडे मोल लेने पड़ेगे ! इतना सोमरस मिलेगा कि उसे भरकर रखने के लिए घड़ों की कमी पड़ जायगी । तभी तो मैं कह रहा था कि मुझे अत्यन्त महान् हर्ष के समाचार मिले हैं । मैं फिर कहता हूँ कि हर्ष के प्रकाशन के विना मैं पागल हो जाऊँगा । हर्ष के प्रकाशन का मार्ग वताओ ! शीघ्र वताओ कि मैं हर्ष के मारे नाचूँ या सिर के वल खड़ा हो जाऊँ !

कुण्डेश्वरी

चाहे जो करो ! तुम वुद्धिमान् तो थे ही, भाग्यशाली भी सिद्ध हो रहे हो ! तुम्हारी सफलता में मुझे अव कोई सन्देह नहीं रहा ।

[पटाक्षेप ।]

तीसरा अंक

पहला दृश्य

[कपिलवस्तु । नन्द का प्रासाद । मध्याह्न ।]

[सुन्दरिका वीणा बजा रही है। पास ही नन्द का अधूरा चित्र चित्राधार पर लगा हुआ दिखाई दे रहा है। चित्र के निकट चित्र बनाने की साधनसामग्री रखी है। नन्द प्रवेश करते हैं। उनके आते ही सुन्दरिका वीणा बजाना बन्द कर देती है।]

नन्द

रुक क्यों गई सुन्दरिका? वीणा बजाना बन्द क्यों कर दिया? बजाओ! बजाती क्यों नहीं हो?

सुन्दरिका

अब तो तुम आ गए। अब यह नहीं, अब तो हृदय की वीणा बजेगी।

नन्द

क्या हृदय की वीणा मेरी अनुपस्थिति में नहीं बजती ?

सुन्दरिका

तुम्हारी अनुपस्थिति में जैसे यह घर सूना-सा लगने लगता है, वैसे ही मेरे हृदय की वीणा भी मौन हो जाती है।

नन्द

इसलिए यह बाहर की वीणा बजानी पड़ती है ? क्यों ?

सुन्दरिका

हृदय के स्वरों के मौन हो जाने पर बाहर की झंकारों से सहायता लेनी पड़ती है।

[नन्द अपने अधूरे चित्र तथा चित्रसामग्री-की ओर देखते हैं।]

नन्द

और यह चित्र ? यह चित्र किसका है ? यह किसलिए ?

[सुन्दरिका चित्र की ओर मुड़ती हैं।]

सुन्दरिका

अभी यह चित्र अधूरा है। पूरा बन जाने पर यह तुम्हें अवश्य अच्छा लगेगा। यह तुम्हारा ही चित्र है। इसीको बनाने के लिए आजकल चित्रकला का अभ्यास कर रही हूँ।

नन्द

तुम्हारी संगीतसाधना अकेली ही हृदयों में उथलपुथल उत्पन्न क देने के लिए पर्याप्त है। यदि तुम चित्रकला की भी साधना कर लगोगी, तो यह संसार कहाँ रहेगा ?

मुन्दरिका

मेरे हर कार्य की अनुचित प्रशंसा करना तुम्हारा स्वभाव ही बन गया है। अभी तो मैंने केवल कुछ रेखाएँ खींचना ही सीखा है। देखें, कब तक कुछ सीख पाती हूँ, और कब तक तुम्हारा यह चित्र पूरा कर पाती हूँ।

नन्द

यदि चित्र ही बनाने हैं, तो उन महान् पूर्वजों के बनाओ, जिनकी वीरता और उदारता की कहानियों से इतिहास के पृष्ठ के पृष्ठ भरे पड़े हैं और जिनका पुण्यस्मरण करके आज भी भुजाओं में स्फुरण होने लगता है, वक्षःस्थल फूल उठता है और मस्तक उन्नत हो जाता है। मुझ-जैसे अकिंचन का चित्र बनाने से क्या लाभ ?

मुन्दरिका

मानव केवल अपने हृदय की श्रद्धा ही को तो मूर्त रूप नहीं देना चाहता, वह अपने स्नेह को भी रेखाओं, स्वरों और अक्षरों में साकार करना चाहता है। तुम्हारी अनुपस्थिति में तुम्हारे चित्र से मुझे कितना सहारा मिलेगा, यह मैं ही जान सकती हूँ, तुम नहीं। और फिर अपने हाथ की बनी प्रत्येक वस्तु की भाँति यह चित्र भी मुझे अत्यन्त प्रिय होगा।

नन्द

किन्तु, मैं अनुपस्थित कब होता हूँ ? मेरे दिन का अधिकांश भाग तुम्हारे ही साथ तो बीतता है।

मुन्दरिका

अभी हम दोनों का विवाह हुए थोड़े ही दिन हुए हैं, इसलिए, तुम कुछ समय मेरे पास रह सकते हो। शीघ्र ही वे दिन भी आयेंगे, जब तुम मेरे निकट न रह सकोगे।

नन्द

क्यों ? क्या मैं भिक्षु बन जाऊँगा ? क्या तुम्हें अब भी मुझपर अविश्वास है ?

सुन्दरिका

ऐसी बात मुँह पर न लाओ, भूलकर भी नहीं ! इस विषय में मैं बिलकुल निश्चिन्त हूँ। तुम मुझे जो वचन दे चुके हो, उसपर मुझे पूर्ण विश्वास है। उसी पतवार के सहारे तो मैंने तुम्हारे साथ अपने विवाहित जीवन की नौका संसार के सागर में छोड़ दी है। पर, और बातें भी तो हैं।

नन्द

वे क्या ?

सुन्दरिका

अभी तो मेरे पूज्यपाद श्वशुर, महाराज शुद्धोदन, तथा स्नेहशीला सास, महारानी प्रजावती के पास तुम्हारे लिए अनेक योजनाएँ शेष हैं। वे तुम्हारे लिए जो नया प्रासाद बनवा चुके हैं, उसमें तुम्हारे प्रवेश करने का महोत्सव शीघ्र ही मनाया जायगा। उसके तत्काल बाद ही वे दोनों तुम्हें अपना राज्य सौंपकर संन्यास ग्रहण करेंगे। तुम्हारा राज्याभिषेक-महोत्सव भी कुछ ही दिनों में होनेवाला है।

नन्द

राज्याभिषेक का अर्थ तुम्हारा वियोग तो नहीं है।

सुन्दरिका

संयोग और वियोग दोनों के अनिवार्य ताने-बाने ही से तो जीवन-का वस्त्र बना हुआ है। संन्यास मुझे इसलिए असह्य है कि उससे पति-पत्नी में चिरवियोग हो जाता है। यों तो जीवन में संयोग के साथ-साथ वियोग भी समय-समय पर सहन करना ही पड़ता है।

नन्द

मैं तो तुमसे अपने वियोग की कोई संभावना नहीं देखता।

सुन्दरिका

मैं तो देखती हूँ। राज्याभिषेक होते ही तुम्हें राजयोग की साधना करनी होगी। वह सन्यास की भाँति ही कठिन साधना है। शासक बनने के बाद तुम्हारा वह स्नेह, जिसपर इस समय केवल मेरा एकाधिकार है, दूसरे रूप में तुम्हारे प्रजाजनों में बँट जायगा। तुम्हें दिनरात उनके हित की कामना और सुख की साधना करनी होगी। हिंस्र पशुओं तथा आततायी मनुष्यों से जनता की रक्षा करने के लिए तुम्हें शस्त्र धारण करने होंगे, अपना पसीना और रक्त बहाना पड़ेगा। आक्रमणकारियों से युद्ध करने में तुम्हारे दिन ही नहीं, महीने भी रणभूमि में बीत जाया करेंगे और मैं कपिलवस्तु में अकेली ही रहा करूँगी।

नन्द

क्या तुम मेरे साथ न चला करोगी? तुम केवल सौन्दर्य और कला ही की रानी नहीं हो, तुम्हें प्रकृति ने इतनी बुद्धि भी दी है कि तुम राजसभा में मेरे महामंत्री का स्थान शोभित कर सको और इतनी शक्ति और वीरता भी तुम्हें प्राप्त है कि तुम युद्धभूमि में मेरे प्रधान-सेनापति का कार्य कर सको।

सुन्दरिका

यह उचित न होगा। तुम्हारे रणभूमि में चले जाने पर मुझे जनता की सेवा की व्यवस्था के लिए कपिलवस्तु ही में रहना होगा और तुम्हारे राजसभा में जाने पर मुझे अन्त:पुर की व्यवस्था का उत्तरदायित्व वहन करना पड़ेगा। समय-समय पर होनेवाले तुम्हारे ऐसे वियोगों के लिए मैंने अपनी एक व्यवस्था कर ली है।

नन्द

क्या व्यवस्था कर ली है?

सुन्दरिका

मेरी सखी माधविका दुर्भाग्य के चक्र में फँस गई हैं। वह तुम्हारे मित्र राजकुमार देवदत्त से विवाह करना चाहती हैं, पर, देवदत्त भिक्षु बनने के अपने निश्चय पर दृढ़ हैं। माधविका के जीवन पर दुःख की काली घटा छाई हुई है। मेरे साथ रहने से उनका भी जी बहलेगा और मेरी भी वियोग की सूनी घड़ियाँ कट जाया करेंगी। इस विचार से मैंने उन्हें अपने पास बुला भेजा है। वह आने ही वाली हैं।

नन्द

यह तुमने बड़ा अच्छा किया। उनके साथ रहने से तुम्हें बहुत सहायता मिलेगी। यों मैं देवदत्त को समझाने का यत्न कर सकता था, पर, वह सदा से स्वभाव के दुराग्रही हैं। वह माधविका को स्वीकार करने का मेरा अनुरोध न मानेंगे।

सुन्दरिका

कर्तव्य की पुकार पर जब-जब तुम मुझसे दूर चले जाया करोगे, तब-तब वियोग के कठिन क्षणों में मेरी वीणा की झंकार, मेरी सखी माधविका का गान, मेरी चित्रकला की साधना और तुम्हारा चित्र-दर्शन ही मेरा सबसे बड़ा सहारा हुआ करेगा।

नन्द

और मेरा सहारा ? राजयोग की साधना में मुझे जब-जब तुमसे अलग होना पड़ेगा, तब-तब मेरा साथी कौन होगा ? जानती हो ?

सुन्दरिका

कर्तव्यपालन की भावना ही तुम्हारा सबसे बड़ा सहारा होगी।

नन्द

नहीं। मेरा सहारा होगी तुम्हारी स्मृति, तुम्हारा वह मानसचित्र, जिसे मैं प्रत्येक क्षण अपने हृदय में रखता हूँ।

(माधविका का प्रवेश।)

माधविका

नमस्कार राजकुमारी ! प्रणाम राजकुमार !

सुन्दरिका

आओ बहन माधविका ! मुझे विश्वास था कि तुम आओगी और शीघ्र ही आओगी ।

नन्द

आपको फिर अपने बीच में पाकर अत्यन्त हर्ष हो रहा है राजकुमारी !

माधविका

धन्यवाद राजकुमार ! सखी सुन्दरिका, तुम तो यहाँ अपने नव-विवाहित जीवन में मुझे भूल ही गई थी, पर, मुझे तो तुम्हारा स्मरण दिन-रात विकल किया करता था ।

सुन्दरिका

यदि भूल गई होती, तो तुम्हें इतने शीघ्र पत्र लिखकर क्यों बुलाती ?

माधविका

कहिए राजकुमार नन्द, आपका राज्याभिषेक कब होनेवाला है ?

नन्द

इस विषय में मैंने अपने माता-पिता को पूर्ण आत्म-समर्पण करने का निश्चय कर लिया है । वे जब चाहें, तब मुझे कोई भी उचित सेवा या उत्तरदायित्व सौंप सकते हैं । मैं यथाशक्ति उसके निर्वाह का यत्न करूँगा । अच्छा, मैं अब चलूँ । आप दोनों बहुत दिनों में मिली हैं । वार्तालाप कीजिए !

सुन्दरिका

तुम्हारे आने से मुझे बड़ा सहारा मिला है सखी ! विवाहित जीवन के उत्तरदायित्व का कोई अनुभव न होने के कारण

व्यग्र थी। तुम-जैसी विश्वासपात्र सहेली का अभाव मुझे बुरी तरह अखर रहा था।

माधविका

तुम्हारा सन्देश पाते ही मुझे ऐसा अनुभव हुआ मानो तुमने मेरे ही मन की बात सोची हो। मैं भी चाह रही थी कि बचपन की भाँति तुम्हारे इस नए जीवन में भी मैं तुम्हारी यथासंभव सहायता करूँ। तुम्हारा सन्देश पाते ही मैं चल पड़ी।

सुन्दरिका

इसपर तुम्हारे माता-पिता तो अप्रसन्न नहीं हुए ?

माधविका

उनका अप्रसन्न होना तो स्वाभाविक ही था। पर, वे समझाने-बुझाने से मान गए। उन्होंने अनुभव से बहुत कुछ सीख लिया है। उन्होंने कुछ ही दिन पहले अपने हृदय पर जो भीषण वज्राघात सहन किया था, उनकी तुलना में मेरा यहाँ आना नगण्य है।

सुन्दरिका

वज्राघात ! वज्राघात कैसा ?

माधविका

तुम सब सुन चुकी होगी सखी ! वे मेरे विवाह के लिए आग्रह करते ही रह गए और मैंने उनका आग्रह अस्वीकार कर दिया। अपने विवाह के सम्बन्ध में मैं अपना निश्चय पहले ही कर चुकी थी। उसके असफल होने पर अन्यत्र व्यवस्था कैसे की जा सकती थी ?

सुन्दरिका

राजकुमार देवदत्त का हृदय पत्थर का बना हुआ है। उन्हें कितना समझाया गया, पर, भिक्षु बनने के अपने निश्चय से वह अणुमात्र भी विचलित नहीं हुए।

माधविका

उनके इस आग्रह के पीछे अभिसंधि थी, इसलिए, उन्हें अपने निश्चय से विचलित करना और भी कठिन हो गया।

सुन्दरिका

अभिसंधि कैसी ?

माधविका

तुम जानती ही हो कि वह तथागत गौतम बुद्ध से, अपनी बहन यशोधरा के परित्याग के कारण, व्यक्तिगत द्वेष रखते हैं। उनका कथन है कि बौद्ध भिक्षु बनकर ही भिक्षु गौतम से प्रतिशोध लिया जा सकता है, और किसी प्रकार से नहीं।

सुन्दरिका

ऐसे व्यक्ति के पीछे तुम क्यों अपना जीवन नष्ट करना चाहती हो माधविका ?

माधविका

क्षमा करो बहन, मैं उनकी निन्दा नहीं सुन सकती। उनमें अनेक गुण भी तो हैं। और फिर शीलवती नारी अपने हृदय से अपने साथी का चुनाव जीवन में एक ही बार करती है। एक बार चुनाव कर लेने पर वह अपना निश्चय नहीं बदल सकती। वह दूसरा साथी नहीं चुन सकती, भले ही उसे पहला साथी कभी न मिले।

सुन्दरिका

तुम्हारे जीवन की आशाओं के अंकुरों पर भीषण तुषारपात हुआ है सखी ! मेरा हृदय तुम्हारी सहानुभूति में सदा द्रवित होता रहेगा।

माधविका

मैं अपने जीवन का अपने ढंग से सदुपयोग करूंगी बहन ! उन्होंने तथागत गौतम बुद्ध से प्रतिशोध लेने को भिक्षु बनने का निश्चय किया है। मैं उनके इस संकल्प का प्रायश्चित्त करूंगी। मैं तथागत से प्रार्थना करूंगी कि वह मुझे इसलिए प्रव्रज्या ग्रहण करने की अनु-

दें कि मैं अपने जीवन को बहुजनहिताय अर्पित करके उनके बदले स्वयं प्रायश्चित्त की आग में अणु-अणु करके तपती रहूँ।

सुन्दरिका

तुम्हारा आदर्श महान् है माधविका! पर, यह व्रत कितना कठोर होगा! शीघ्रता से ऐसा निश्चय न करो! कुछ दिन मेरे पास रहो! मैं तुम्हारे दुःख में हृदय से तुम्हारे साथ हूँ।

माधविका

मुझे तुम्हारे स्नेह पर अभिमान है बहन! पर, कर्तव्य का मार्ग निराला है।

सुन्दरिका

स्नेह की मनुहार को भी तो तुम्हें कुछ महत्त्व देना ही पड़ेगा। मैं कुछ दिनों तक तो तुम्हें अपने पास अवश्य रखूँगी। आज के इस क्षण के लिए भी मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ बहन! उसे स्वीकार करो!

माधविका

तुम्हारे और मेरे बीच में न तो प्रार्थना की भाषा चल सकती है और न आज्ञा की। इच्छा ही हमारी परस्पर प्रार्थना और आज्ञा हो सकती है। बोलो सखी, क्या चाहती हो? क्या इच्छा है तुम्हारी? मुझे इस समय तुम्हारे लिए क्या करना चाहिए?

सुन्दरिका

केवल एक गान! घड़ीभर एक गान गाओ सखी! संसार के सम्मान के कोलाहल में जैसे मनुष्य स्नेह की एक मुसकान के लिए तरसा करता है, वैसे ही अपने इस नवविवाहित जीवन के उत्सव-आयोजनों में मैं तुम्हारे एक गान के लिए तरस रही थी। राजभवन के कुशल गायक-गायिकाओं के उत्कृष्ट संगीत में मुझे स्वाभाविकता का प्राणस्पर्श न मिल सका। उसपर तो तुम्हारे सरल कंठस्वर ही का अधिकार है सखी!

माधविका

बारंबार मेरे *गीत* सुनने की तुम्हारी यह इच्छा बचपन से लेकर अब तक ज्यों-की-त्यों चली आ रही है। तुम यह भी तो नहीं सोचती कि दो-एक दिन में तुम राजमहिषी बननेवाली हो।

सुन्दरिका

राजमहिषी तो तुम भी बन सकती थी बहन! पर, तुमने तो उस मार्ग से मुख ही मोड़ लिया। तुम्हें देखकर यह पता चलता है कि परिग्रह के मार्ग से परित्याग का मार्ग कितना महान् है!

माधविका

सखियों की प्रशंसा करने के अपने इस पुराने स्वभाव को भी तुम्हें, राजमहिषी बनने के पहले, बदल देना चाहिए।

सुन्दरिका

किसीका स्वभाव बदल सकना इतना सरल नहीं है बहन! अच्छा तो अब मेरी एक गान की प्रार्थना स्वीकार करो!

माधविका

तो फिर तुम मेरे दुर्बल स्वरों को सहारा देने के लिए अपने हाथों में अपनी महिमामयी वीणा धारण करो!

[सुन्दरिका वीणा हाथों में लेकर बजाना प्रारम्भ करती है। नन्द-का प्रवेश।]

नन्द

बन्द करो वीणा सुन्दरिका! अनर्थ हो गया! भारी अनर्थ हो गया!

[सुन्दरिका शीघ्रता से वीणा एक ओर रख देती हैं। वीणा के तार तार झनझना जाते हैं।]

सुन्दरिका

अनर्थ ! अनर्थ कैसा ?

नन्द

तथागत बुद्ध मेरे द्वार पर भिक्षा के लिए आए और सत्कार पाए विना ही लौट गए !

सुन्दरिका

हाय ! यह तो बहुत बुरा हुआ !

नन्द

इससे बुरा और क्या हो सकता है ! मेरे जीवन में कलंक का अमिट टीका लग गया ! लज्जा और दुःख के मारे मैं मरा जा रहा हूँ ! मैंने तुम्हें यह वचन अवश्य दिया था कि मैं भिक्षु न बनूँगा, पर, यह वचन कभी नहीं दिया था कि अपने घर पर आने पर भी अपने बड़े भाई का अतिथि-सत्कार न करूँगा।

सुन्दरिका

मैं कब कहती हूँ कि अतिथि-सत्कार न किया जाय ! तथागत तो आपके बड़े भाई हैं, मैं तो समान्य अतिथियों के सत्कार को भी अपना कुलधर्म मानती हूँ। मैं भी यह सहन नहीं कर सकती कि तथागत-जैसे अतिथि द्वार पर पधारकर यों ही लौट जायँ। पर, यह हुआ कैसे ?

नन्द

विवाह, नवगृहप्रवेश और राज्याभिषेक ! तीन-तीन महोत्सवों का आनन्द ! राजभवन के सेवक, सेविकाएँ और सारे परिजन मानो मदमत्त हो रहे थे। सब लोग अपने-अपने आनन्द-आयोजन में लगे हुए थे। तथागत द्वार पर भिक्षा के लिए पधारकर यों ही लौट गए।

सुन्दरिका

और उन्हें किसीने देखा तक नहीं ?

नन्द

किसीको क्या पड़ी थी कि उन्हें देखता ! सब लोग आनन्द में

मदमत्त जो हो रहे थे ! कितना बड़ा अनर्थ हो गया ! तथागत गौतम बुद्ध, जिनके पदार्पण से आज राजभवन, नगर, ग्राम और कुटीर सब अपने को धन्य मानते हैं, मुझ अभागे के द्वार पर भिक्षा के लिए आए और सत्कार पाए बिना ही लौट गए !

माधविका

सारे संसार को शान्ति और निर्वाण की उपसम्पदा बाँटने को राजपाट छोड़कर निकले हुए तथागत गौतम बुद्ध अपने भाई के द्वार से भिक्षा भी न पा सकें, इससे बढ़कर दुर्भाग्य और क्या हो सकता है !

नन्द २

मैं आज संसार का सबसे अधिक अभागा प्राणी हूँ । स्वयं तथागत बुद्ध स्वेच्छा से मुझ अभागे के द्वार पर आए और मैं मायाजाल में ऐसा फँसा रहा कि उन्हें देख तक न पाया । घर के सारे नौकरों, नौकरानियों और परिजनों पर भी मेरी ही मदान्धता की छाया पड़ी हुई थी । उनमें से कोई उन्हें न देख पाया । इतने बड़े कलंक, इतने लज्जाजनक लाछन को सहन करते हुए जीवित रहना मेरे लिए नरकवास से भी अधिक दुःखकर है ।

सुन्दरिका

तथागत को लौटे कितना समय हो गया ?

नन्द

• बाहर से आनेवाली एक सेविका ने अभी बताया कि उसने तथागत को अभी हमारे द्वार से लौटते देखा है ।

माधविका

तब तो तथागत अभी अधिक दूर न पहुँच पाए होंगे !

नन्द

हाँ, वह अभी निकट ही होंगे । मैं अभी जाकर उन्हें आदरसहित लिए आता हूँ ।

सुन्दरिका

उन्हें अवश्य लाना चाहिए। पर, क्या उन्हें लाने को और किसी-को नहीं भेजा जा सकता ?

नन्द

नहीं ! तथागत का असम्मान जघन्य अपराध है। इतने बड़े अपराध का प्रायश्चित्त मेरे जाए विना न हो सकेगा। किसी सेवक या सेविका को भेजकर बुलवाना तो और अधिक अपमान करना होगा !

माधविका

यदि आप लोग आज्ञा दें, तो मैं जाकर तथागत को सादर लिवा लाऊँ।

नन्द

नहीं, आप क्यों जायँगी ! अपराध मेरा है, उसका प्रायश्चित्त भी मुझीको करना होगा। संसार के इतिहास में इतने बड़े अनर्थ, इतने बड़े अन्याय का और कोई उदाहरण न मिलेगा। सिद्धार्थकुमार ने मानवता के कल्याण के लिए सर्वस्वत्याग किया, इतने बड़े राज्य को तृण की भाँति ठुकरा दिया, पत्नी और पुत्र को छोड़ दिया ! यदि वह राज्यत्याग न करते, तो क्या मुझे राज्य का उत्तराधिकार मिल सकता था ! इतना महान् भाई केवल भिक्षा के लिए स्वेच्छा से चलकर मेरे द्वार पर आया और मैं नराधम उसे मुट्ठी-भर भिक्षा देने योग्य भी न हुआ ! मुझे भारी कलंक लग गया ? मैं इसका प्रायश्चित्त करूँगा। तथागत के चरण पकड़कर क्षमा माँगूंगा। उन्हें लौटा लाऊँगा। उनका हार्दिक आदर-सत्कार करूँगा। मुझे अविलम्ब जाना चाहिए। मैं चला !

[नन्द गमनोद्यत होते हैं।]

सुन्दरिका

शीघ्र लौटना प्रिय, मुझे न भूल जाना !

नन्द

अभी आता हूँ प्रिये, अभी आता हूँ ! मैं तुम्हें कैसे भूल सकता हूँ, तुम्हें दिए हुए अपने वचन को कैसे भूल सकता हूँ ?

[नन्द का प्रस्थान।]

[पट-परिवर्तन।]

सुन्दरिका

उन्हें अवश्य लाना चाहिए। पर, क्या उन्हें लाने को और किसी-को नहीं भेजा जा सकता ?

नन्द

नहीं ! तथागत का असम्मान जघन्य अपराध है। इतने बड़े अपराध का प्रायश्चित्त मेरे जाए विना न हो सकेगा। किसी सेवक या सेविका को भेजकर बुलवाना तो और अधिक अपमान करना होगा !

माधविका

यदि आप लोग आज्ञा दें, तो मैं जाकर तथागत को सादर लिवा लाऊँ।

नन्द

नहीं, आप क्यों जायँगी ! अपराध मेरा है, उसका प्रायश्चित्त भी मुझीको करना होगा। संसार के इतिहास में इतने बड़े अनर्थ, इतने बड़े अन्याय का और कोई उदाहरण न मिलेगा। सिद्धार्थकुमार ने मानवता के कल्याण के लिए सर्वस्वत्याग किया, इतने बड़े राज्य को तृण की भाँति ठुकरा दिया, पत्नी और पुत्र को छोड़ दिया ! यदि वह राज्यत्याग न करते, तो क्या मुझे राज्य का उत्तराधिकार मिल सकता था ! इतना महान् भाई केवल भिक्षा के लिए स्वेच्छा से चल-कर मेरे द्वार पर आया और मैं नराधम उसे मुट्ठी-भर भिक्षा देने योग्य भी न हुआ ! मुझे भारी कलंक लग गया ? मैं इसका प्रायश्चित्त करूँगा। तथागत के चरण पकड़कर क्षमा माँगूँगा। उन्हें लौटा लाऊँगा। उनका हार्दिक आदर-सत्कार करूँगा। मुझे अविलम्ब जाना चाहिए। मैं चला !

[नन्द गमनोद्यत होते हैं।]

सुन्दरिका

शीघ्र लौटना प्रिय, मुझे न भूल जाना !

नन्द

अभी आता हूँ प्रिये, अभी आता हूँ ! मैं तुम्हें कैसे भूल सकता हूँ, तुम्हें दिए हुए अपने वचन को कैसे भूल सकता हूँ ?

[नन्द का प्रस्थान ।]

[पट-परिवर्तन ।]

दूसरा दृश्य

[कपिलवस्तु । शुद्धोदन का प्रासाद । सायंकाल।]

[शुद्धोदन और प्रजावती वार्तालाप कर रहे हैं।]

प्रजावती

अब और क्या चाहिए महाराज ? आपके पुत्र नन्द का विवाह हुआ । अप्सराओं से अधिक सुन्दर और ऋषिकन्याओं से अधिक गुणवती पुत्रवधू घर में आई। वहूवेटों के लिए नया प्रासाद वनकर तैयार हुआ। शीघ्र ही वे दोनों नवगृहप्रवेश करेंगे । नन्द का राज्याभिषेक भी शीघ्र ही हो रहा है । फिर भी आप चिन्तित क्यों दिखाई देते हैं ?

शुद्धोदन

निश्चिन्त वही हो सकता है प्रजावती, जिसके सामने कोई समस्या

न हो। मेरी चिन्ता का कारण एक नई समस्या है। सिद्धार्थकुमार के वियोग ने मुझे मरणासन्न कर रखा था। मेरी इच्छा थी कि किसी प्रकार एक बार अपने प्यारे पुत्र सिद्धार्थ का मुख देखूँ। इसके लिए कितने प्रयत्न किए! कितने लोगों को सिद्धार्थ को कपिलवस्तु ले आने को भेजा! पर, जो गया, भिक्षु बनकर वहीं रह गया। लौटकर समाचार देने तक न आया। कितनी लम्बी प्रतीक्षा के बाद मेरे प्यारे सिद्धार्थ ने कपिलवस्तु में पदार्पण किया! किन्तु, उसने आते ही एक नई समस्या खड़ी कर दी।

प्रजावती

नई समस्या कैसी?

शुद्धोदन

तुम क्या जानती नहीं हो प्रजावती? अपनी ही राजधानी में सिद्धार्थकुमार आजकल घर-घर भीख माँगते फिरते हैं। कपिलवस्तु के राजवंश के लिए यह कितनी लज्जा की बात है! इससे मेरी स्थिति यह हो गई है कि लज्जा के मारे किसीको अपना मुँह नहीं दिखा सकता। आजकल इसी समस्या की चिन्ता मुझे दिन-रात खाए जा रही है। नन्द के विवाह, नवगृहप्रवेश और राज्याभिषेक की सारी प्रसन्नता इससे फीकी पड़ गई है।

प्रजावती

चिन्ता करने से तो आपके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। इसके निराकरण का कुछ उपाय करना चाहिए।

शुद्धोदन

सारे उपाय असफल हो चुके हैं। सिद्धार्थकुमार को अत्यन्त अनुनय-विनय करके समझाया, पर, वह नहीं मानते। कहते हैं—"भिक्षाटन मेरा कुलधर्म है, मैं जहाँ जाऊँगा, इसी कुलधर्म का अनुसरण करूँगा। मेरे लिए कपिलवस्तु तथा अन्य स्थानों में कोई अन्तर नहीं है।'

प्रजावती

कुलधर्म कैसा ? भिक्षाटन कुलधर्म कैसा ? शाक्यों के कुल का धर्म आदिकाल से राज्यसंचालन रहा है, भिक्षाटन नहीं।

शुद्धोदन

सिद्धार्थकुमार कहते हैं—अब मेरा कुल बदल गया है, अब मैं शाक्यों के कुल के बदले बुद्धों के कुल का हो गया हूँ और भिक्षाटन ही युगों से बुद्धों का कुलधर्म रहा है।

प्रजावती

कैसा विचित्र लड़का है ! बचपन ही से इस लड़के की सारी बातें अनोखी रही हैं। रोगियों, वृद्धों और मृतकों को सब लोग प्रतिदिन देखते हैं, पर, किसीपर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। किन्तु, मेरा बेटा सिद्धार्थ रोगी, बूढ़े और शव को देखते ही कह उठा – "मैं तो प्राणिमात्र को रोग, जरा और मरण के बन्धन से मुक्त करने को निकल रहा हूँ।" तबसे अब तक मेरा बच्चा लौटकर ही नहीं आया। कितने वर्ष बीत गए ! बहुत बुलाने पर अब जब दो-चार दिन को आया भी है, तो अपने ही पूर्वजों की इस राजधानी में घर-घर भीख माँगता फिर रहा है। जिधर से निकलता है, उसके पीछे भीड़ हो लेती है।

शुद्धोदन

यह तो और भी लज्जा की बात है ! उस भीड़ के सामने ही वह घर-घर से भिक्षा माँगता है ! अपने ही राज्य में भीख ! इस बूढ़े पिता-का अनुरोध भी नहीं मानता ! कैसा निर्मोही हो गया है ! क्या इसीके लिए माँ-बाप बच्चों को जन्म देते हैं ?

प्रजावती

जन्म देना सरल है महाराज, पर, पाल-पोसकर बड़ा करना बहुत कठिन काम है ! मुझसे पूछिए स्वामी ! मैंने इस सिद्धार्थ को कैसी कठिनाई से पाला है। बहन महामाया तो इसे जन्म देकर ही चल बसीं

थी ! मैंने इसके पीछे रक्त और पसीना एक कर दिया था ! मैंने इतना किया, पर, मैं सिद्धार्थ से उसके बदले कुछ नहीं चाहती, शपथ करके कहती हूँ, कुछ नहीं चाहती ! मैं केवल यह चाहती हूँ कि वह मुझसे रहे । उसका काषाय-वस्त्र पहनकर वन-वन फिरना और भिक्षा का रूखा-सूखा अन्न खाना मेरे कलेजे में छेद किए देता है । मेरा हृदय माँ का हृदय है । माँ के हृदय की वेदना कोई नहीं समझता !

शुद्धोदन

मैं तुम्हारे हृदय की वेदना का अनुभव कर सकता हूँ प्रजावती ! कपिलवस्तु का बच्चा-बच्चा इस बात का साक्षी है कि तुमने सिद्धार्थ को नन्द से अधिक स्नेह से पाला था । इसमें कोई सन्देह नहीं कि नन्द के राज्यारोहण का सुख तुम्हारे जीवन का बहुत बड़ा सौभाग्य होगा, पर, उस सुख में भी जब तुम्हारे हृदय में सिद्धार्थ के वियोग का काँटा खटकेगा, तब तुम्हारी विकलता असह्य हो उठेगी । किस दुर्दिन में तुमने सिद्धार्थ पर अपना सारा वात्सल्य उँड़ेल दिया था प्रजावती ! अभागिनी माँ ! अभागिनी नारी !

[माधविका का प्रवेश]

माधविका

आप दोनों के लिए मैं बहुत बुरा समाचार लाई हूँ । राजकुमार नन्द भिक्षु बन गए हैं ।

शुद्धोदन

नन्द भी भिक्षु बन गया ! कब ? कहाँ ?

प्रजावती

नन्द भिक्षु ! कैसे ? नन्द भिक्षु कैसे बन गया ?

माधविका

उन्होंने तथागत गौतम बुद्ध के उपदेश पर संन्यास ले लिया ।

शुद्धोदन

कब ले लिया संन्यास ?

प्रजावती

हाय दुर्भाग्य ! नन्द ने भी संन्यास ले लिया !

माधविका

तथागत बुद्ध आज राजकुमार नन्द के द्वार पर भिक्षा के लिए आए थे।

शुद्धोदन

भिक्षा के लिए ? नन्द के द्वार पर सिद्धार्थ ? भाई के द्वार पर भाई भिक्षा माँगने पहुँचा ! इससे बढ़कर दुर्भाग्य क्या हो सकता है ! इससे अधिक लज्जा की बात क्या हो सकती है ! नन्द ने उसे रोका नहीं ?

माधविका

राजकुमार नन्द को तथागत के पधारने का पता ही न चला।

प्रजावती

पता ही न चला ! क्यों ?

माधविका

उत्सव-आयोजन की प्रसन्नता में मग्न सेवक-सेविकाओं ने तथागत को देखा ही नहीं !

शुद्धोदन

देखा ही नहीं ! किसीने नहीं देखा ?

माधविका

जी हाँ, किसीने नहीं देखा और तथागत भिक्षा पाए बिना ही लौट गए।

प्रजावती

अनर्थ हो गया ! भाई के द्वार से भाई यों ही लौट गया ! उ भिक्षा भी न मिली !

शुद्धोदन

भिक्षा भी न मिली ? सिद्धार्थ यों ही लौट गया ? यह और भी बुरा हुआ !

माधविका

कुछ देर बाद जब बाहर से आनेवाली सेविका ने बताया कि तथागत लौट गए हैं, तब राजकुमार नन्द दुखी होकर उसी समय उन्हें बुलाने को चल पड़े।

प्रजावती

नन्द उसी समय चल पड़ा। भाई को बुलाने चल पड़ा ! भाई के लिए भाई के हृदय में ऐसा ही प्रेम होना है। मेरे सिद्धार्थ और नन्द एक दूसरे को सगे भाइयों से अधिक प्रेम करते आए हैं।

माधविका

राजकुमार नन्द के जाते ही राजकुमारी सुन्दरिका की विकलता असह्य हो गई और जब बाहर से आए हुए अन्य सेवक ने कुछ समय के बाद यह समाचार सुनाया कि राजकुमार नन्द ने संन्यास ग्रहण कर लिया है, तब तो उन्हें मूर्छा ही आ गई !

प्रजावती

हाय अभागी सुन्दरिका !

शुद्धोदन

हमारे मान-नाश उस निरपराधिनी का भी भाग्य फूट गया !

माधविका

जाते समय राजकुमार नन्द सुन्दरिका को दिए हुए अपने वचन को बड़ी दृढ़ता से दुहरा गए थे। कह गए थे कि "मैं शीघ्र ही लौटकर आऊँगा।" पर, हुआ कुछ और ही !

शुद्धोदन

नन्द ने अचानक संन्यास कैसे ले लिया ? बड़ी विचि

माधविका

सेवक कह रहा था कि तथागत कुछ दूर जा चुके थे। उनके पास पहुँचते ही राजकुमार नन्द ने उन्हें प्रणाम किया और उनसे अपने घर चलकर सत्कार ग्रहण करने की प्रार्थना की।

प्रजावती

इसपर सिद्धार्थ ने क्या कहा ?

माधविका

कुछ नहीं; तथागत ने प्रणाम के उत्तर में केवल एक वार राजकुमार नन्द के सिर पर हाथ रखा और आगे चलते गए। नन्द भी उनके पीछे चलते गए। चलते-चलते, कुछ समय वाद, उन्होंने चुपचाप अपना भिक्षापात्र नन्द के हाथ में दे दिया!

शुद्धोदन

नन्द के हाथ में भिक्षा-पात्र दे दिया।

माधविका

जी हाँ, उन्होंने नन्द को अपना भिक्षापात्र दे दिया और उसी प्रकार आगे चलते गए। नन्द ने चाहा कि कुछ कहें, पर, तथागत के साथ चलनेवाली नगरवासियों की भीड़ के कारण वह कुछ भी न कह पाए! इस प्रकार तथागत के पीछे नन्द भी उनका भिक्षापात्र लिए हुए चलते ही चले गए। चलते-चलते दोनों पास के न्यग्रोध-उपवन में जा पहुँचे, जहाँ तथागत अपने सैकड़ों भिक्षु शिष्यों के साथ आजकल ठहरे हुए हैं!

प्रजावती

नन्द भी वहीं जा पहुँचा ?

माधविका

जी हाँ। कुछ समय के वाद उस सेवक को एक भिक्षु से ज्ञात हुआ कि तथागत के उपदेश पर राजकुमार नन्द ने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली है।

शुद्धोदन

हाय रे दुर्भाग्य ! सिद्धार्थ के बाद नन्द भी भिक्षु बन गया ! निष्ठुर दुर्दैव, तूने मुझे कहीं का नहीं रखा ! अब मैं क्या करूँ ! अब तो मुझे कोई आशा दिखाई नहीं देती !

प्रजावती

सुकुमारी सुन्दरिका ! तेरा भी भाग्य इस प्रकार फूटना था !

माधविका

मुझमें इतनी क्षमता तो नहीं है कि मैं आप लोगों से धैर्य धारण करा सकूँ, पर, मैं नम्रतापूर्वक अनुरोध अवश्य कर सकती हूँ। राजकुमारी सुन्दरिका जिस धैर्य के साथ इस भीषण आघात को सहन करने का यत्न करने लगी है, उसी धैर्य की आप दोनों से आशा करना क्या उचित नहीं है ?

शुद्धोदन

धैर्य ? अब धैर्य की बात न कहो ! धैर्य कहाँ तक धारण किया जा सकता है ! मनुष्य के धैर्य की कोई सीमा होती है ! छोटे-से कलेजे में एक साथ इतने घाव कैसे सहन किए जा सकते हैं ? महामाया का देहान्त पहला वज्राघात था, जिसे मैंने सहन किया। सिद्धार्थ का गृहत्याग दूसरा भीषण आघात था, जिसके मारे आज तक मेरा हृदय सिसक रहा है। नन्द के सन्यास ने तो मेरे कलेजे को कुचल ही डाला है। अब मैं कैसे धैर्य धारण करूँ ?

प्रजावती

इन लड़कों को विधाता ने सब-कुछ सिखाया, पर, माँ के हृदय की वेदना को समझना नहीं सिखाया ! ये लड़के यदि क्षणभर को माँ बनकर देखें, तो इनकी आँखें खुल जायें !

शुद्धोदन

जीवन की सारी योजनाएँ धूल में मिल गईं ! सोचा था कि जीवनभर दुःख के आघात सहन करनेवाले हृदय को अन्तिम दि

कुछ सुख देखने को मिलेगा। पर, यह सोचते समय मैं यह भूल गया कि सुख के नाम पर मेरे भाग्य में विधाता ने केवल बड़ा-सा शून्य ही लिख दिया है।

माधविका

वास्तव में आप लोगों के जीवन की कहानी एक अत्यन्त करुण और दुःखान्त कहानी है। मेरा हृदय आप दोनों के लिए गम्भीर सहानुभूति से भरा हुआ है। पर, इस विषय पर एक दूसरी दृष्टि से भी विचार किया जा सकता है।

शुद्धोदन

वह क्या ?

माधविका

आपकी पुत्रवधू सुन्दरिकादेवी आपके लिए पुत्री ही के समान हैं। उनकी सहेली होने के नाते मैं भी आपकी एक पुत्री ही हूँ। यदि आप लोग मुझे क्षमा करें, तो, इस समय मेरे मस्तिष्क में जो कुछ दूसरे प्रकार के विचार आ रहे हैं, उन्हें भी मैं आपके सामने, निस्संकोच रूप में, प्रकट कर दूँ।

प्रजावती

संकोच की क्या बात है बेटी ! तुम कौन कोई दूसरी हो ! जो कुछ कहना चाहो, निस्संकोच होकर कहो !

माधविका

मेरा नम्र निवेदन है कि आप लोग दुःख और शोक के घने अंधकार को विवेक की ज्योति की किरण से दूर करने का यत्न कीजिए। विचार करने का एक और भी दृष्टिकोण हो सकता है। स्थिति पर शान्ति और गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है। अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए मैं आपसे कुछ प्रश्न पूछना चाहती हूँ।

शुद्धोदन

क्या पूछना चाहती हो ? पूछो बेटी !

माधविका

तथागत गौतम जहाँ-जहाँ जाते हैं, वहाँ-वहाँ बहुत बड़ी संख्या में लोग उनके अनुयायी बन जाते हैं। वह जिस मार्ग पर चलते हैं, उस-पर सैकड़ों व्यक्तियों की भीड़ उनके पीछे हो लेती है। ऐसा उन्हींके साथ क्यों होता है, हममें से और किसी के साथ क्यों नहीं होता? क्या इसका कारण यह नहीं है कि हम लोग अपने व्यक्तिगत क्षुद्र स्वार्थों में फँसे हुए हैं और तथागत बुद्ध ने जनकल्याण के महान् लक्ष्य के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया है?

शुद्धोदन

क्यों नहीं! सिद्धार्थ ने उच्च आदर्शों ही के लिए गृहत्याग किया है।

माधविका

तब फिर उनके संन्यास पर आप लोग दुःख के बदले गौरव का अनुभव क्यों नहीं करते? आप लोग यह क्यों नहीं अनुभव करते कि मानवता के कल्याण के लिए, बहुजन के हित के लिए, यौवनकाल में राज्य, वैभव, सुन्दर पत्नी और सुख के समस्त साधनों को ठुकराकर वन-वन और ग्राम-ग्राम घूमनेवाले तथागत बुद्ध के माता-पिता कहलाकर आप लोग गौरवान्वित हुए हैं, धन्य हुए हैं, कृतकृत्य हुए हैं?

प्रजावती

यह तो है ही बेटी।

माधविका

यदि ऐसा ही है, तो आप लोग क्यों नहीं अपने दुःख, शोक, माया, मोह और ममता के सारे बन्धन तोड़कर प्रसन्न चित्त से तथागत का समर्थन करते, क्यों नहीं देश-देशान्तर में मुक्त कंठ से उद्घोष करते फिरते कि गौतम बुद्ध केवल हमारे नहीं, वरन्, सारे संसार के हैं। इसीलिए, वह महान् है और हम सौभाग्यशाली हैं कि हम माता-पिता रहे हैं!

शुद्धोदन

तुम ठीक कहती हो बेटी ! हमारा कर्तव्य यही है। मोह ने हमारी दृष्टि धुंधली कर रखी थी। शोक के गहन अन्धकार में तुमने हमें विवेक की ज्योति की किरण दी है।

प्रजावती

इतनी-सी अवस्था में तुममें इतनी आत्मज्योति कहाँसे आ गई बेटी ?

माधविका

मैं आपकी प्रशंसा के योग्य नहीं हूँ। अनुभव का आघात सहे बिना मनुष्य की आँखें नहीं खुलती। मैं अपनी वेदना आप लोगों पर प्रकट तो नहीं कर सकती, पर, इतना कह सकती हूँ कि मैंने भी अपने जीवन में भीषण आघात सहन किया है। उस आघात की आप लोग कल्पना नहीं कर सकते, पर, यह सत्य है कि उसीने मेरी आँखें खोली हैं। मैं चाहती हूँ कि राजकुमार नन्द के गृहत्याग के आघात से आप दोनों को भी जीवन का नया प्रकाश प्राप्त हो, नई दृष्टि उपलब्ध हो। आघात ही से प्रकाश मिलता है और अनुभव ही से ज्ञान की प्राप्ति होती है।

शुद्धोदन

मिल रहा है बेटी, हमें भी कुछ प्रकाश मिल रहा है। हम भी मोह के अन्धकार के पार कुछ-कुछ देख पा रहे हैं। संन्यास तो हम दोनों को भी ग्रहण करना था, पर, हम चाहते थे कि नन्द को राज्य सौंपकर फिर गृहत्याग करें।

माधविका

मुझे क्षमा कीजिए महाराज, बुढ़ापे का वैराग्य कोई वैराग्य नहीं है ! वैराग्य, त्याग और बलिदान तो वह है, जिसका उद्भव भरी जवानी में हो। त्याग तो किया है उन सिद्धार्थकुमार ने जो यौवन के प्रथम चरण ही में यशोधरा-जैसी सुन्दर और सुशील पत्नी और

कपिलवस्तु- जैसे विशाल और समृद्ध राज्य को, आत्मप्रेरणा के एक ही क्षण में, छोड़कर चल दिए। और सिद्धार्थ से भी कठिन त्याग किसका है, जानते है आप लोग ?

प्रजावती

सिद्धार्थ से भी कठिन त्याग ? सिद्धार्थ से भी कठिन त्याग किसव है बेटी ?

माधविका

नन्द का ! सिद्धार्थ तो जन्म ही से महान् थे, बचपन ही से विशे विभूति से युक्त थे। उनका त्याग तो असाधारण पुरुष का, महा क्षमताशाली व्यक्ति का त्याग था। उनके लिए कुछ भी कठिन नहं था। उन्होंने जो कुछ किया, वह उन जैसे महापुरुष के लिए अत्यन्त स्वभाविक, अत्यन्त सरल था। किन्तु, नन्द तो सदा से सामान्य थे इसीलिए, उनका त्याग अधिक कठिन, अधिक महत्त्वपूर्ण है। उनमे ऐसी कोई विशेष विभूति नही थी कि उन्हे इतने बड़े त्याग के योग्य समझा जाता। वह तो सदा से साधारण राजकुमार की भांति खाने, पीने, हँसने, खेलने, गाने बजाने आखेट करने और सुख से रहने के अभ्यासी थे। सुन्दरिका के प्रेम मे भी वह इतने गहरे डूब गए थे कि उससे उनका उद्धार असम्भव था। फिर भी, अपनी समस्त आकांक्षाओं की दुर्बलताओं के होते हुए भी, उन्होंने एक क्षण मे सर्वस्वत्याग कर दिया। उनका त्याग उनके लिए अत्यन्त कठिन था, इसीलिए, वह अत्यन्त असाधारण है! यदि न्याय की तुला को विचलित न होने दिया जाय, तो महापुरुषो के त्याग की तुलना मे सामान्य जनो का त्याग अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है।

शुद्धोदन

वास्तव में नन्द ने आश्चर्यजनक साहस का कार्य किया है। उससे किसीको ऐसी आशा न थी।

शुद्धोदन

तुम ठीक कहती हो बेटी ! हमारा कर्त्तव्य यही है। मोह ने हमारी दृष्टि धुँधली कर रखी थी। शोक के गहन अन्धकार में तुमने हमें विवेक की ज्योति की किरण दी है।

प्रजावती

इतनी-सी अवस्था में तुममें इतनी आत्मज्योति कहाँसे आ गई बेटी ?

माधविका

मैं आपकी प्रशंसा के योग्य नहीं हूँ। अनुभव का आघात सहे बिना मनुष्य की आँखें नहीं खुलती। मैं अपनी वेदना आप लोगों पर प्रकट तो नहीं कर सकती, पर, इतना कह सकती हूँ कि मैंने भी अपने जीवन में भीषण आघात सहन किया है। उस आघात की आप लोग कल्पना नहीं कर सकते, पर, यह सत्य है कि उसीने मेरी आँखें खोली हैं। मैं चाहती हूँ कि राजकुमार नन्द के गृहत्याग के आघात से आप दोनों को भी जीवन का नया प्रकाश प्राप्त हो, नई दृष्टि उपलब्ध हो। आघात ही से प्रकाश मिलता है और अनुभव ही से ज्ञान की प्राप्ति होती है।

शुद्धोदन

मिल रहा है बेटी, हमें भी कुछ प्रकाश मिल रहा है। हम भी मोह के अन्धकार के पार कुछ-कुछ देख पा रहे हैं। संन्यास तो हम दोनों को भी ग्रहण करना था, पर, हम चाहते थे कि नन्द को राज्य सौंपकर फिर गृहत्याग करें।

माधविका

मुझे क्षमा कीजिए महाराज, बुढ़ापे का वैराग्य कोई वैराग्य नहीं है ! वैराग्य, त्याग और बलिदान तो वह है, जिसका उद्भव भरी जवानी में हो। त्याग तो किया है उन सिद्धार्थकुमार ने जो यौवन के प्रथम चरण ही में यशोधरा-जैसी सुन्दर और सुशील पत्नी और

कपिलवस्तु- जैसे विशाल और समृद्ध राज्य को, आत्मप्रेरणा के एक ही क्षण में, छोड़कर चल दिए। और सिद्धार्थ से भी कठिन त्याग किसका है, जानते हैं आप लोग ?

प्रजावती

सिद्धार्थ से भी कठिन त्याग ? सिद्धार्थ से भी कठिन त्याग किसका है बेटी ?

माधविका

('नन्द का ! सिद्धार्थ तो जन्म ही से महान् थे, बचपन ही से विशेष विभूति से युक्त थे। उनका त्याग तो असाधारण पुरुष का, महान् क्षमताशाली व्यक्ति का त्याग था। उनके लिए कुछ भी कठिन नहीं था। उन्होने जो कुछ किया, वह उन जैसे महापुरुष के लिए अत्यन्त स्वभाविक, अत्यन्त सरल था। किन्तु, नन्द तो सदा से सामान्य थे; इसीलिए, उनका त्याग अधिक कठिन, अधिक महत्त्वपूर्ण है। उनमे ऐसी कोई विशेष विभूति नही थी कि उन्हे इतने बड़े त्याग के योग्य समझा जाता। वह तो सदा से साधारण राजकुमार की भाँति खाने पीने, हँसने, खेलने, गाने बजाने आखेट करने और सुख से रहने के अभ्यासी थे। सुन्दरिका के प्रेम मे भी वह इतने गहरे डूब गए थे कि उससे उनका उद्धार असम्भव था। फिर भी, अपनी समस्त आकांक्षाओं की दुर्बलताओ के होते हुए भी, उन्होने एक क्षण मे सर्वस्वत्याग कर दिया। उनका त्याग उनके लिए अत्यन्त कठिन था, इसीलिए, वह अत्यन्त असाधारण है ! यदि न्याय की तुला को विचलित न होने दिया जाय, तो महापुरुषों के त्याग की तुलना मे सामान्य जनों का त्याग अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है।'

शुद्धोदन

वास्तव मे नन्द ने आश्चर्यजनक साहस का कार्य किया है। उनसे किसीको ऐसी आशा न थी।

माधविका

नन्द का यह त्याग इतिहास में एक अनोखी घटना के रूप में लिखा जायगा। सुखोपभोग की आकांक्षाओं की समस्त दुर्बलताओं से घिरा हुआ एक सामान्य राजकुमार नन्द, नए विवाह, नवगृहप्रवेश के आयोजन और सामने आए हुए राज्याभिषेक के स्वर्ण-अवसर को क्षणभर में ठुकराकर चल देता है! कैसा अद्भुत त्याग है! आप दोनों गौतम बुद्ध के माता-पिता कहलाकर जितने धन्य हुए हैं, गौतम नन्द के माता-पिता कहलाकर उससे कम धन्य नहीं हुए हैं! अपने इस महान् गौरव का स्वाभिमान के साथ अनुभव कीजिए! आप-जैसे सौभाग्यशाली व्यक्तियों के लिए मोह, शोक और दुःख का निर्माण नहीं हुआ है। बुद्ध और नन्द के माता-पिता होना तो आप लोगों का महान् गौरव है ही, इससे भी बढ़कर एक गौरव और है।

प्रजावती

वह क्या ?

माधविका

वह यह कि आप लोग यशोधरा और सुन्दरिका-जैसी साध्वी पुत्र-वधुओं के सास-ससुर हैं, जिन्होंने यौवन के प्रथम चरण ही में पति-वियोग की उत्कट वेदना के हलाहल-विष को अपने प्राणों में पचाया है! शंकर ने तो अपने विष को कण्ठ ही में रख लिया था, पर, उन दोनों देवियों ने अपनी व्यथा के विष को अपने हृदय के अन्तराल में धारण किया है। संसार की बहुत कम स्त्रियाँ इतने धैर्य का परिचय दे सकी हैं! उनके सास-ससुर होकर आप दोनों और धन्य हुए हैं। अपने सौभाग्य पर सुख का अनुभव कीजिए! विवेक की आँखें खोलिए! दुःख का कोई कारण नहीं है!

[पट-परिवर्तन।]

तीसरा दृश्य

[कपिलवस्तु के पास न्यग्रोध-नामक शाक्य के उपवन में बौद्ध भिक्षुओं के वासस्थान का एक भाग। दिन का तीसरा पहर।]

[आनन्द और नन्द बातचीत कर रहे हैं।]

नन्द

कैसी गम्भीर शान्ति है, भिक्षु आनन्द, इस उपवन के उस भाग में, जिसमें तथागत बुद्ध ध्यानमग्न हैं। उनके आसपास सैकड़ों भिक्षु अपनी-अपनी साधना में लगे हुए हैं, पर, इतने बड़े समुदाय में भी कहीं कोई शब्द नहीं सुनाई देता। इतनी गम्भीर शान्ति उपवन के इस भाग में क्यों नहीं है?

आनन्द

उपवन के इस भाग में वैसी ही गम्भीर शान्ति होती,

यदि यह भाग आने-वालों के ठहरने के लिए सुरक्षित न रखा गया होता। भिक्षुओं के समान शान्ति-साधना का अभ्यास अभी उन लोगों-को नहीं है, जो दूर-दूर से तथागत से मिलने यहाँ आते हैं। धीरे-धीरे उन्हें भी इसका अभ्यास हो जायगा। आनेवालों के साथ कठोरता का व्यवहार तो नहीं किया जा सकता। अनुशासन के सम्बन्ध में उनके साथ तो कुछ उदारता ही का व्यवहार करना पड़ता है।

नन्द

कैसे आश्चर्य की बात है कि प्रातःकाल से सायंकाल तक व्यवस्था रखने पर भी आनेवालों का क्रम ही नहीं टूटता! उनके स्वागत का उत्तरदायित्व आप बड़े धैर्य के साथ सँभालते हैं। मैं देखता हूँ कि उनकी संख्या दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है।

आनन्द

तथागत गौतम बुद्ध की महिमा ही ऐसी है भिक्षु नन्द! उनका उच्च आदर्श और निर्मल चारित्र्य जनता को उनके पास दूर-दूर से खींच लाता है। तुम्हारे सम्बन्ध में भी कैसा अद्‌भुत चमत्कार हुआ! तथागत के सम्पर्क में आते ही तुम्हारा युग-युग का मायामोह का बन्धन एक ही क्षण में टूट गया। तुम्हें भिक्षुसंघ में, अपने बीच में, पाकर हमें जो आनन्द हो रहा है, उसे शब्दों में प्रकट नहीं किया जा सकता।

नन्द

सच है, भिक्षु आनन्द, तथागत की महिमा ऐसी ही है! पारस के स्पर्श से लोहा भी सोना हो जाता है! मेरे प्रणाम करते ही परम कारुणिक तथागत ने मेरे मस्तक पर अपना वरद हाथ रख दिया। उनके हाथ के अमृत-स्पर्श से एक ही क्षण में मेरे हृदय का सारा मोह दूर हो गया। तथागत की कृपा होते ही मेरे जीवन में व्याप्त माया के गहरे अन्धकार को उनके उपदेश से प्राप्त विवेक के प्रकाश की एक ही किरण ने दूर कर दिया।

आनन्द

इसका श्रेय तथागत को तो है ही, तुम्हें भी है भिक्षु नन्द ! तथागत की करुणा तो पात्र और अपात्र सभीपर समान रूप से बरसा करती है; पर, उसे उचित रूप में ग्रहण तो पात्र ही कर पाता है, अपात्र नहीं । तुम्हें भले ही उसका ज्ञान या अनुभव न हो, पर, तुम्हारे मन की गहराई में त्यागभावना पहले से छिपी हुई अवश्य थी । तथागत की प्रेरणा ने उसे केवल उभार दिया । यदि तुममें सात्त्विक भावना पहले से न होती, तो तुम्हें दीक्षा की उपसम्पदा कभी न मिली होती । यदि कुएँ में पानी ही न हो, तो उसमें से घड़े में भरकर रस्सी द्वारा क्या खींचा जा सकता है ?

नन्द

आज तो आयुष्मान राहुल को भी तथागत ने दीक्षा की उपसम्पदा दे दी है । वह भी एक छोटे-से भिक्षु के रूप में आज से हम लोगों के भिक्षुसघ में सम्मिलित हो गया है । भिक्षु के काषाय वेश में आयुष्मान् राहुल कितना अच्छा लगता है !

आनन्द

तथागत का पुत्र होने का गौरव जिस आयुष्मान् राहुल को प्राप्त था, वह तथागत के संन्यास के उत्तराधिकार से वंचित कैसे रह सकता था ?

नन्द

शाक्यवंश पर तथागत की विशेष कृपा है । महाराज शुद्धोदन को छोड़कर अब शाक्यों के राजकुल में ऐसा कोई पुरुष नहीं बचा है, जिसने संन्यास ग्रहण न किया हो । महाराज शुद्धोदन भी अपनी वृद्धावस्था के कारण पहले ही से संन्यास लेने का निश्चय कर चुके हैं । वह भी अब शीघ्र ही भिक्षु सघ में सम्मिलित होंगे । शाक्यवंश का इससे बड़ा सौभाग्य क्या हो सकता है कि उसने तथागत के इंगित

पर अपनेको सम्पूर्ण रूप से बहुजन के हित के लिए समर्पित कर दिया है।

आनन्द

यह प्रसंगवश ही हुआ है। तथागत का तो अब न तो कोई वंश ही रह गया है और न किसी वंश के प्रति उनका विशेष कृपाभाव ही है। समदृष्टि तथागत तो प्राणिमात्र को अपना कुटुम्बी समझते हैं। तुम्हें भी अब सारी मानवता को अपना वंश समझना होगा।

नन्द

मैंने केवल प्रसंगवश शाक्य-राजवंश की चर्चा की थी। मेरा आशय और कुछ न था। यह तो अब मैं भी जान गया हूँ कि सारी मानवता भिक्षुओं का वंश है, सारी पृथ्वी उनकी जन्मभूमि और प्राणिमात्र उनके कुटुम्बी। इस उदार भावना को लेकर मानवता के कल्याण के लिए भिक्षुगण तथागत के नेतृत्व में निरंतर भ्रमण करते हैं, जिससे प्राणिमात्र जन्म, मरण, जरा, रोग आदि के बन्धनों से मुक्त होकर वास्तविक शान्ति और निर्वाण पा सकें।

आनन्द

जनहित के लिए जीवनोत्सर्ग का यह महान् आदर्श युग-युग से प्रतिष्ठित है और सदा प्रतिष्ठित रहेगा। मानवता के कल्याण के उच्च लक्ष्य को लेकर निर्मल चारित्र्यवाले व्यक्ति पृथ्वी पर जब-जब लोकसेवा और निरन्तर भ्रमण का व्रत धारण करेंगे, तब-तब संसार को मोह के अन्धकार में सत्य के प्रकाश की किरणों का दर्शन होगा। यह क्रम चिरंतन है और सदा बना रहेगा। रोग, दुःख, कष्ट, क्लेश से पीड़ित मानवता ऐसे पवित्र परिभ्रमणों को अपने लिए भूतकाल में भी आशा का संकेत समझती रही है, वर्तमान में भी समझ रही है और भविष्य में भी समझती रहेगी। हम सब अत्यन्त भाग्यशाली हैं कि तथागत-जैसे उदार और साहसी सर्वस्वत्यागी, अथक परिव्राजक

माधविका

महाराज गौतम शुद्धोदन तथा महारानी प्रजावती देवी को अपने यहाँ आने का आशय स्वयं बताएँगी, पर, मेरे आज यहाँ आने का एक मुख्य प्रयोजन भिक्षु नन्द को प्रणाम करना भी है।

नन्द

प्रणाम के योग्य तो केवल तथागत बुद्ध हैं माधविकादेवी, मैं तो इस योग्य नहीं हूँ।

माधविका

हिमालय के उच्च शिखर की वन्दना करनेवालों की संसार में कोई कमी नहीं है; कमी यदि है, तो अपने संगठन, साधना, श्रम, श्रद्धा और उत्सर्ग से हिमालय को हिमालय बनानेवाले छोटे-छोटे रजकणों की अर्चना करनेवालों की है। मैं तुम्हारी वन्दना करने इसलिए आई हूँ, भिक्षु नन्द, कि तुम सामान्य थे और सामान्य से महान् बने हो। तुम्हारी साधना और तुम्हारा त्याग उन महापुरुषों की साधना और त्याग से अधिक महत्त्वपूर्ण है, जो अपनी विशेष क्षमता के कारण अनायास विशेष सफलता प्राप्त करते हैं।

नन्द

ऐसा न कहिए! तथागत की महत्ता सर्वोपरि है।

माधविका

मैं कब कहती हूँ कि तथागत की महत्ता सर्वोपरि नहीं है? तथागत यदि सूर्य हैं, तो तुम दीपक हो। सूर्य के लिए प्रखर प्रकाश अत्यन्त स्वाभाविक है, उसके लिए उसे कोई विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता। पर, दीपक तो प्रकाश के लिए मिट्टी के पात्र के अतिरिक्त तेल भी जुटाता है, बत्ती भी जुटाता है। और फिर वह प्रयत्नपूर्वक धीरे-धीरे जल-जलकर अपनेको उत्सर्ग करने की साधना करता है, अपने को मिटाता है। मैं तो सूर्य की महत्ता की अपेक्षा दीपक की लघु साधना को अधिक महत्त्व देती हूँ, क्योंकि, दीपक की लघुता प्रयास

करके मानवता की सेवा के योग्य महान् बनती है। उसे प्रतिकूल परिस्थितियों से कठिन संघर्ष करना पड़ता है। दीपक बीच-बीच में वायु के थपेड़े भी सहन करता है।

नन्द

मैं तो सदा साधारण रहा हूँ ग्रौर ग्राज भी हूँ ! मेरा सर्वस्व तो तथागत की दी हुई दीक्षा की उपसम्पदा ही है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि मुझे जो उपसम्पदा मिली है, वह सबको मिले। कितना ग्रच्छा होता, यदि ग्राप भी तथागत के हाथों संन्यास की उपसम्पदा, भिक्षु-व्रत का सौभाग्य, प्राप्त कर सकती।

प्रजावती

इसकी सम्भावना कहाँ है ? स्त्रियों को संन्यास की दीक्षा देने पर तो प्रतिबन्ध लगा हुग्रा है। इससे बढकर निष्ठुरता क्या हो सकती है कि पतियों को पत्नियों से ग्रौर पुत्रों को माताग्रों से ग्रलग करके भिक्षु बना लिया जाय ग्रौर पत्नियों ग्रौर माताग्रों को भिक्षुणी बनकर ग्रपने जीवन को सार्थक करने, साधना में लगने ग्रौर ग्रपनी वेदना भूलने का ग्रवसर ही न पाने दिया जाय।

ग्रानन्द

ग्राप लोगों के पधारने का मुख्य प्रयोजन तो ग्रभी तक मुझे ज्ञात ही न हो सका। तथागत तो इतने दयालु है कि बिना प्रयोजन ग्राने-वालों को भी ग्रपनी करुणा से कृतार्थ करते हैं, पर, यदि विशिष्ट प्रयोजन पहले से ज्ञात हो जाता है, तो, संघ को उचित व्यवस्था करने में सुविधा होती है।

शुद्धोदन

मैं तथागत के पास इसलिए ग्राया हूँ कि उनसे यह प्रार्थना करूँ कि वह ग्राज से यह नियम बना दें कि किसी भी ग्रल्पवयस्क नवयुवक या बालक को तब तक भिक्षु न बनने दिया जाय, जब तक उस पिता या कुटुम्बियों से ग्रनुमति न ले ली जाय। मैं तथागत

कहने आया हूँ कि उनके संन्यासी होने पर मुझे बहुत दुःख हुआ था, नन्द के संन्यास ग्रहण करने पर भी मुझे बहुत वेदना हुई और राहुल के भिक्षु बनने पर तो मेरे शोक की सीमा ही नहीं रही। सन्तान के स्नेह का आकर्षण और उसके वियोग की पीड़ा "मेरे चमड़े को छेद रही है, चमड़े को छेदकर मांस को छेद रही है, मांस को छेदकर नसों को छेद रही है, नसों को छेदकर हड्डियों को छेद रही है और हड्डियों को छेदकर" उसने मुझे बुरी तरह घायल कर दिया है। मेरी प्रार्थना है कि परम कारुणिक तथागत भविष्य में और किसी माता-पिता को ऐसी मर्मवेदना न होने दें।

आनन्द

आपका प्रयोजन उचित प्रतीत होता है गौतम ! तथागत का ध्यान का कार्यक्रम समाप्त होते ही आप अपना निवेदन उनके सम्मुख रखिएगा। आशा है, तथागत इसे अवश्य स्वीकार करेंगे। अच्छा, यह तो बताइए कि अपने संन्यास-ग्रहण के सम्बन्ध में आपका क्या विचार है ?

शुद्धोदन

मैं प्रस्तुत हूँ भिक्षु आनन्द ! तथागत के सामने अपना यह निवेदन रखने के बाद ही मैं सन्यास ग्रहण कर लूँगा।

आनन्द

आपका क्या प्रयोजन है प्रजावती देवी ?

प्रजावती

मैं तथागत के सामने नारी-जाति की करुण पुकार रखना चाहती हूँ। तथागत को यह तो अधिकार है कि वह पुरुषों को भिक्षु बनाएँ और नारियों को पतियों और पुत्रों की वियोगज्वाला में जलाएँ,पर, साथ ही उनकी करुणा को नारियों को भी यह अधिकार देना चाहिए कि यदि वे अपनी वेदना को भूलने के लिए अपने जीवन को भी जनकल्याण के लिए उत्सर्ग करना चाहें, तो उन्हें भी दीक्षा लेकर भिक्षुसंघ

सम्मिलित होने का अवसर मिल सके। यदि मेरी यह प्रार्थना तथागत ने स्वीकार कर ली, तो हम चारों, मैं, मेरी दोनों पुत्रवधुएँ और राजकुमारी माधविकादेवी, तत्काल संन्यास ले लेंगी।

आनन्द

आपका प्रयोजन भी उचित जान पड़ता है देवी! आशा है, तथागत आपकी प्रार्थना भी स्वीकार कर लेंगे। उसका फल यह तो होगा ही कि आप चारों साध्वी महिलाओं का भिक्षु-संघ में प्रवेश होगा, यह भी होगा कि भविष्य के लिए स्त्रियों की दीक्षा का मार्ग भी खुल जायगा। अब आप अपना प्रयोजन बताइए माधविकादेवी!

माधविका

यदि तथागत स्त्रियों को दीक्षा का अधिकार न देंगे, तब तो मैं उनसे कुछ न कहूँगी। एक बार फिर, लघुता की महत्ता की प्रशंसिका के रूप में, भिक्षु नन्द की वन्दना करके लौट जाऊँगी। किन्तु, यदि तथागत ने प्रजावतीदेवी की प्रार्थना स्वीकार करके नारियों को दीक्षा लेने का अधिकार दे दिया, तो मैं तथागत से अपनी ओर से कुछ विनम्र प्रार्थनाएँ करूँगी।

आनन्द

वे क्या?

माधविका

मैं उनसे कहूँगी कि उन्होंने और भिक्षु नन्द ने यशोधरादेवी और सुन्दरिकादेवी के साथ अन्याय किया है कि सन्यास लेने के पहले उनसे अनुमति नहीं ली। उस अन्याय के परिमार्जन के लिए तथागत को एक बार यशोधरादेवी के और भिक्षु नन्द को सुन्दरिकादेवी के पास उनके निवासस्थान पर जाना चाहिए और उनके त्याग, बलिदान, कष्ट-सहन और धैर्य की प्रशंसा करनी चाहिए। इसका फल यह होगा कि उन स्वाभिमानी महिलाओं के स्वाभिमान की रक्षा होगी, उनके त्याग और बलिदान को प्रोत्साहन मिलेगा, वे उचित प्रतिष्ठा

के साथ संन्यास ग्रहण करेंगी और संसार में नारी-जाति का गौरव बढ़ेगा।

आनन्द

आशा तो है कि आपका यह निवेदन भी परम कारुणिक तथागत स्वीकार कर लेंगे। आपको और क्या कहना है ?

माधविका

अपने लिए तो अन्तिम रूप में मुझे तथागत से केवल यही कहना होगा कि तथागत अपने उच्च आदर्शों के पथ पर मुझे भी अपनी एक अकिञ्चन और विनम्र अनुयायिनी के रूप में स्वीकार करें। मैं यत्न करूँगी कि अपने भिक्षु-जीवन का प्रत्येक क्षण दुखी मानवता की सेवा में निष्ठापूर्वक अर्पित करूँ।

आनन्द

औरों के सम्बन्ध में भी आप कुछ कहेंगी ?

माधविका

मैं यह कहूँगी कि तथागत की करुणा जगत् के जीवन का बहुत बड़ा सौभाग्य है। जब तक इस पृथ्वी पर तथागत जैसे नेताओं और यशोधरा, सुन्दरिका, आनन्द और नन्द जैसे अनुयायियों की परम्परा अवतरित होती रहेगी, तब तक मानवता को निराश होने का कोई कारण न होगा। उच्च आदर्श का ध्रुव तारा जिनके सामने और चारित्र्य का पाथेय जिनके साथ होगा, उन महान् भ्रमणकारियों की यात्रा का प्रत्येक चरण प्रत्येक समय में मानवता के कल्याण और बहुजन के हित के लिए ही होगा।

नन्द

औरों के सम्बन्ध में आप भले ही कुछ भी कहें, पर, मेरे सम्बन्ध में तो आपका प्रशंसासूचक शब्दों का प्रयोग करना अत्यन्त अनुचित है, घोर अन्याय है। मैं फिर कहता हूँ माधविकादेवी, कि मैं एक अत्यन्त

के साथ संन्यास ग्रहण करेंगी और संसार में नारी-जाति का गौरव बढ़ेगा।

आनन्द

आशा तो है कि आपका यह निवेदन भी परम कारुणिक तथागत स्वीकार कर लेंगे। आपको और क्या कहना है ?

माधविका

अपने लिए तो अन्तिम रूप में मुझे तथागत से केवल यही कहना होगा कि तथागत अपने उच्च आदर्शों के पथ पर मुझे भी अपनी एक अकिञ्चन और विनम्र अनुयायिनी के रूप में स्वीकार करें। मैं यत्न करूँगी कि अपने भिक्षु-जीवन का प्रत्येक क्षण दुखी मानवता की सेवा में निष्ठापूर्वक अर्पित करूँ।

आनन्द

औरों के सम्बन्ध में भी आप कुछ कहेंगी ?

माधविका

मैं यह कहूँगी कि तथागत की करुणा जगत् के जीवन का बहुत बड़ा सौभाग्य है। जब तक इस पृथ्वी पर तथागत जैसे नेताओं और यशोधरा, सुन्दरिका, आनन्द और नन्द जैसे अनुयायियों की परम्परा अवतरित होती रहेगी, तब तक मानवता को निराश होने का कोई कारण न होगा। उच्च आदर्श का ध्रुव तारा जिनके सामने और चारित्र्य का पाथेय जिनके साथ होगा, उन महान् श्रमणकारियों की यात्रा का प्रत्येक चरण प्रत्येक समय में मानवता के कल्याण और बहुजन के हित के लिए ही होगा।

नन्द

औरों के सम्बन्ध में आप भले ही कुछ भी कहें, पर, मेरे सम्बन्ध में तो आपका प्रशंसासूचक शब्दों का प्रयोग करना अत्यन्त अनुचित है, घोर अन्याय है। मैं फिर कहता हूँ माधविकादेवी, कि मैं एक अत्यन्त

अकिंचन भिक्षु के अतिरिक्त और कुछ नही हूँ। मैंने कोई त्याग नही किया। मुझे भूल जाने मे इतिहास का हित है।)

माधविका

इतिहास तुम्हें भले ही भूल जावे भिक्षु नन्द, पर, इससे तुम्हारा महत्त्व कदापि कम न होगा। तुम कहते हो कि तुम अकिञ्चन हो, मैं कहती हूँ कि तुम्हारी यही महत्ता है। अकिञ्चन होते हुए भी, सामान्य होते हुए भी, दुर्बल होते हुए भी, तुमने इतना महान् त्याग किया है, यह तुम्हारी पहली विशेषता है और अपने महान् त्याग को त्याग ही न मानना तुम्हारी दूसरी विशेषता है। जिस राज्य के पीछे लोग सगे भाइयो और पिताओं की हत्या कर सकते हैं, उसे तुमने तृण की तरह ठुकरा दिया। जिस नारी-सौंदर्य के पीछे लोग पागल बने फिरते हैं, उससे तुमने एक ही क्षण मे सदा के लिए मुँह मोड़ लिया! और यह सब तुमने कब किया है? उस समय, जब तुम्हारे यौवन का प्रथम चरण प्रारम्भ हो रहा है। यह सब तुमने किस स्थिति मे किया है? उस स्थिति में, जब तुम अत्यन्त सामान्य, अत्यन्त साधारण और अकिंचन हो, तुममें विशेषता, अलौकिक महत्ता या विभूति का अणुमात्र भी नही है। कोटि-कोटि सामान्य मानवों की सरल त्याग-भावना के प्रतीक! तुम्हे बारबार प्रणाम!

नन्द

इस अन्याय को रोको भिक्षु आनन्द! यह अब मुझसे नही सहा जाता! इस अनुचित प्रशंसा ने मुझे त्रस्त कर डाला है। मैंने कुछ नही किया, कोई त्याग नही किया। माधविकादेवी मेरी प्रशंसा करके बहुत बड़ा अन्याय कर रही है।

आनन्द

यदि यह अन्याय है, तो ससार में और कोई न्याय हो ही नही सकता! तुम्हारी यह प्रशंसा सर्वथा उचित है भिक्षु नन्द! माधविका-

के साथ संन्यास ग्रहण करेंगी और संसार में नारी-जाति का गौरव बढ़ेगा।

आनन्द

आशा तो है कि आपका यह निवेदन भी परम कारुणिक तथागत स्वीकार कर लेंगे। आपको और क्या कहना है ?

माधविका

अपने लिए तो अन्तिम रूप में मुझे तथागत से केवल यही कहना होगा कि तथागत अपने उच्च आदर्शों के पथ पर मुझे भी अपनी एक अकिञ्चन और विनम्र अनुयायिनी के रूप में स्वीकार करें। मैं यत्न करूँगी कि अपने भिक्षु-जीवन का प्रत्येक क्षण दुखी मानवता की सेवा में निष्ठापूर्वक अर्पित करूँ।

आनन्द

औरों के सम्बन्ध में भी आप कुछ कहेंगी ?

माधविका

मैं यह कहूँगी कि तथागत की करुणा जगत् के जीवन का बहुत बड़ा सौभाग्य है। जब तक इस पृथ्वी पर तथागत जैसे नेताओं और यशोवरा, सुन्दरिका, आनन्द और नन्द जैसे अनुयायियों की परम्परा अवतरित होती रहेगी, तब तक मानवता को निराश होने का कोई कारण न होगा। उच्च आदर्श का ध्रुव तारा जिनके सामने और चारित्र्य का पाथेय जिनके साथ होगा, उन महान् भ्रमणकारियों की यात्रा का प्रत्येक चरण प्रत्येक समय में मानवता के कल्याण और बहुजन के हित के लिए ही होगा।

नन्द

औरों के सम्बन्ध में आप भले ही कुछ भी कहें, पर, मेरे सम्बन्ध में तो आपका प्रशंसासूचक शब्दों का प्रयोग करना अत्यन्त अनुचित है, घोर अन्याय है। मैं फिर कहता हूँ माधविकादेवी, कि मैं एक अत्यन्त

अकिंचन भिक्षु के अतिरिक्त और कुछ नहीं हूँ। मैंने कोई त्याग नहीं किया। मुझे भूल जाने में इतिहास का हित है।

माधविका

इतिहास तुम्हें भले ही भूल जाये भिक्षु नन्द, पर, इससे तुम्हारा महत्त्व कदापि कम न होगा। तुम कहते हो कि तुम अकिञ्चन हो, मैं कहती हूँ कि तुम्हारी यही महत्ता है। अकिञ्चन होते हुए भी, सामान्य होते हुए भी, दुर्बल होते हुए भी, तुमने इतना महान् त्याग किया है, यह तुम्हारी पहली विशेषता है और अपने महान् त्याग को त्याग ही न मानना तुम्हारी दूसरी विशेषता है। जिस राज्य के पीछे लोग सगे भाइयों और पिताओं की हत्या कर सकते हैं, उसे तुमने तृण की तरह ठुकरा दिया। जिस नारी-सौंदर्य के पीछे लोग पागल बने फिरते हैं, उससे तुमने एक ही क्षण में सदा के लिए मुँह मोड़ लिया! और यह सब तुमने कब किया है? उस समय, जब तुम्हारे यौवन का प्रथम चरण प्रारम्भ हो रहा है। यह सब तुमने किस स्थिति मे किया है? उस स्थिति में, जब तुम अत्यन्त सामान्य, अत्यन्त साधारण और अकिंचन हो, तुममें विशेषता, अलौकिक महत्ता या विभूति का अणुमात्र भी नही है। कोटि-कोटि सामान्य मानवों की सरल त्याग-भावना के प्रतीक! तुम्हें बारबार प्रणाम!

नन्द

इस अन्याय को रोको भिक्षु आनन्द! यह अब मुझसे नही सहा जाता! इस अनुचित प्रशंसा ने मुझे त्रस्त कर डाला है। मैंने कुछ नही किया, कोई त्याग नही किया। माधविकादेवी मेरी प्रशंसा करके बहुत बड़ा अन्याय कर रही हैं।

आनन्द

यदि यह अन्याय है, तो ससार मे और कोई न्याय हो ही नही सकता! तुम्हारी यह प्रशंसा सर्वथा उचित है भिक्षु नन्द! माधविका-

वी के मुख से युग-युग का सत्य बोल रहा है। यह ध्रुव सत्य है कि केवल महापुरुष ही मानवता का चिरकल्याण-साधन नहीं कर सकते। इसके लिए उनके बहुसंख्यक और सच्चरित्र अनुयायियों के, सामान्य साधकों के सहयोग की भी आवश्यकता है। ऐसे साधकों के सहयोग की, जो साधारण होते हुए भी, किसी विशेषता या विभूति से युक्त न होते हुए भी, बड़े से बड़ा त्याग और बलिदान क्षण-भर में कर दिखाने का साहस प्रकट कर सकें और अपने त्याग और बलिदान को कभी त्याग और बलिदान न मानें। (मानवता का चिरकल्याण तभी सम्भव होगा, जब घर-घर से नन्द-जैसे त्यागी तरुण लोकहित की साधना के साहसपूर्ण कंटकाकीर्ण पथ पर आगे बढ़ेंगे, अपने युग की पुकार पर, युग की आवश्यकता के अनुरूप, कर्तव्य-पालन करेंगे। भोगवाद, स्वार्थ, कायरता और अवसरवाद के प्रहारों से पीड़ित संसार का नया निर्माण साहस, त्याग और बलिदान ही के आधार पर हो सकेगा।)

[पटाक्षेप।]

श्री मिलिन्द के जीवन पर एक दृष्टि

जन्मस्थान—श्री जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द का जन्म सदर बाजार, मुरार (ग्वालियर, मध्यप्रदेश) में हुआ। स्थायी तथा पुराना वासस्थान भी वहीं है।

जन्मतिथि—कार्तिकपूर्णिमा संवत् १९६४ वि० (ता० १९ नवम्बर १९०७ ई०)

वर्तमान वासस्थान तथा कार्यालय का नया पता—दाल बाजार, लश्कर (ग्वालियर, मध्यप्रदेश)।

शिक्षा—मुरार हाई स्कूल में प्रारम्भिक, तिलक राष्ट्रीय विद्यालय, अकोला (महाराष्ट्र) में मैट्रिक तक, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पूना से मैट्रिक्युलेशन परीक्षा, उसके बाद, तीन वर्ष, साहित्य, इतिहास, अर्थशास्त्र और राजनीति-विज्ञान की उच्च शिक्षा काशी-विद्यापीठ, वाराणसी के तत्कालीन राष्ट्रीय महाविद्यालय में। आपको हिन्दी, संस्कृत, अँग्रेजी, उर्दू, मराठी, बँगला और गुजराती भाषाओं का ज्ञान है।

पुस्तकें—आपकी रचनाओं में 'प्रताप-प्रतिज्ञा' (सन् १९२९ ई०), 'समर्पण' (सन् १९५० ई०),'गौतम नन्द' (सन् १९५२ ई०) तथा 'प्रियदर्शी' (सन् १९६२ ई०) नामक चार नाटक, 'जीवनसगीत' (सन् १९४० ई०), 'नवयुग के गान' (सन् १९४२ ई०), 'बलिपथ के गीत' (सन् १९५० ई०), 'भूमि की अनुभूति' (सन् १९५२ ई०) तथा 'मुक्तिका' (सन् १९५४ ई०) नामक पाँच कविता-सग्रह, स्वतत्रता की बलिवेदी (सन् १९६२ ई०)—नामक एक खड-काव्य, 'चिन्तनकरण' (सन् १९४४ ई०) तथा 'सास्कृतिक प्रश्न' (सन् १९५४ ई०) नामक दो निबन्धसंग्रह और 'बिल्लो का नकछेदन' (सन् १९५४ ई०) नामक एक व्यग्यविनोदकथासग्रह, इस प्रकार तेरह ग्रन्थ अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। 'समता के स्वर'—नामक एक नया कवितासग्रह लिखा जा रहा है।

मध्यभारत-शासन के शिक्षा-विभाग द्वारा नियुक्त साहित्य-मनीषियों की समिति ने आपकी पुस्तक 'बलिपथ के गीत' को १००० रुपयों के प्रथम पुरस्कार के योग्य ठहराया था। उत्तरप्रदेश के शासन के शिक्षा-विभाग ने भी विद्वानों की समिति के निर्णयानुसार, आपके 'बलिपथ के गीत'

र ८०० रुपयों का पुरस्कार दिया था, जो तत्कालीन मध्यभारत के साहित्य-कारों को अद्यावधि प्राप्त पुरस्कारों में सबसे बड़ा था। आपके 'भूमि की अनुभूति' तथा 'गौतम नन्द' नामक ग्रन्थों पर, मध्यभारत-शासन के शिक्षा-विभाग की कलापरिषद् ने, विद्वानों के परामर्श पर, ७०० रुपयों का प्रथम पुरस्कार दिया था। तीसरी बार फिर उक्त परिषद् ने आपके 'मुक्तिका', 'सांस्कृतिक दन' तथा 'बिल्लो का नकछेदन' नामक ग्रन्थों पर ५०० रुपयों का प्रथम पुरस्कार दिया था।

कार्य—विश्वभारती, शान्तिनिकेतन (बंगाल) तथा महिला-आश्रम, वर्धा (महाराष्ट्र) में अध्यापक तथा प्रयाग और अजमेर में साहित्य-सेवी तथा राष्ट्रकर्मी के रूप में रहे। पंजाब तथा ग्वालियर की 'भारती'-नामक मासिक- पत्रिकाओं तथा ग्वालियर के अर्ध-साप्ताहिक पत्र 'जीवन' के प्रधान-सम्पादक रहे। ग्वालियर स्टेट कांग्रेस के प्रधान-मंत्री तथा मध्यभारत प्रांतीय कांग्रेस की कार्यसमिति के सदस्य रहे। सन् १९४२ के स्वतंत्रता-आन्दोलन में तथा बाद में, सन् १९४८ तथा १९५० में भी, जेलों में रहे। कांग्रेस द्वारा शासन ग्रहण किए जाने पर, सन् ४७ में, मिनिस्टर-पद स्वीकार करने का अनुरोध किए जाने पर, उसे अस्वीकार कर चुके हैं। सन् ५५ में शासकीय सेवा में लगभग ८०० रुपए मासिक का एक कार्य पाने का अवसर सामने आने पर उसे भी अस्वीकार करके स्वतन्त्र साहित्यकार तथा पत्रकार बने रहना पसन्द कर चुके हैं। मध्यभारत समाजवादी दल के, सर्व-सम्मति से, दो बार लगातार, प्रांतीय प्रमुख तथा प्रांतीय संसदीय समिति के अध्यक्ष चुने गए थे। मध्यभारत श्रमजीवी पत्रकार-संघ, नव संस्कृति संघ, मध्यभारत हिन्दी साहित्य सम्मेलन, ग्वालियर-संभाग-साहित्यकार-परिषद् तथा साहित्य साधना संसद् आदि संस्थाओं के अध्यक्ष रह चुके हैं। शिक्षा-विभाग द्वारा संस्थापित साहित्य तथा कलाओं की संस्था 'मध्यभारत-कला-परिषद्' के सर्वसम्मति से अशासकीय उपाध्यक्ष चुने गए थे। भारत-सरकार के शिक्षा तथा संस्कृति विभाग द्वारा संस्थापित राष्ट्रीय साहित्य-अकादेमी की महासमिति तथा हिन्दी परामर्शदात्री समिति के अशासकीय सदस्य, मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, ग्वालियर

संभाग श्रमजीवी पत्रकार संघ, साहित्यकार परिषद् तथा मध्यप्रदेश स्वतन्त्रता संग्राम सैनिक संघ की कार्यकारिणी समितियों के सदस्य तथा वृहत्तर ग्वालियर नगर निगम के पार्षद भी रह चुके हैं।

सन् १९५२ से ६० तक अपना अधिकांश समय मुख्यतः स्वाध्याय, ग्रन्थ-लेखन तथा स्वतन्त्र पत्रकार के कार्य में लगाते रहे हैं। देश के अनेक प्रतिष्ठित हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, बंगला, मराठी आदि भाषाओं के दैनिक पत्रों के प्रतिनिधि हैं या रहे हैं। स्वतन्त्र रहते हुए ही मध्यप्रदेशशासन के साप्ताहिक पत्र 'मध्यप्रदेश-संदेश' के साहित्यिक विशेष-अंक के अशासकीय संपादन-परामर्शदाता तथा इन्दौर-भोपाल आकाशवाणी की कार्यक्रम-परामर्श-समिति के अशासकीय सदस्य का कार्य भी कर चुके हैं।

अप्रैल १९६१ से पुनः समाजवादी दल के सदस्य के रूप में राजनीति के क्षेत्र में भी कार्य करने लगे हैं।

ता० १९ जुलाई १९६१ को सर्व सम्मति से मध्यप्रदेश प्रान्तीय समाजवादी दल के अध्यक्ष चुने गए।

श्री ज० प्र० मिलिन्द की साहित्य-साधना पर विद्वानों, पत्रों तथा समालोचकों के कुछ अभिमत

श्री जगन्नाथप्रसाद मिलिंद हिन्दी के उच्चकोटि के साहित्यकार एवं कलाविद् हैं। उनकी रचना बहुत ही स्फूर्तिदायक रही है।

—(डॉ०) वृन्दावनलाल वर्मा

श्री मिलिंद के व्यक्तित्व और कवित्व का मैं सदा प्रशंसक रहा हूँ। वह कवि, नाटककार, साहित्यकार, सफल पत्रकार एवं आदर्श अध्यापक हैं। सबसे बढ़कर वह सहृदय और श्रेष्ठ मानव हैं।

—(डॉ०) हरिशंकर शर्मा

श्री मिलिंदजी की वेदना और भावना केवल मन को छूती ही नहीं, उसमें एक आलोड़न भी पैदा करती है। उसमें आज और कल का वह स्वर, वह चिन्तन भी है, जिसमें एक श्रेष्ठ, सुखी और समृद्ध मानव-समाज की

। प्रत्येक रचना में एक संदेश, साधना की एक छाप और मानवीय वेदना कसक है। इधर ऐसी उद्देश्यपूरक और सार्थक रचनाएँ हिन्दी में कम ही ने को मिलती हैं।

—'नया समाज', अप्रैल १९५२

मिलिंदजी की अनुभूति जीवन की अनुभूति है। वह भूमि की अनुभूति ही : अपने को खड़ा करते हैं। इसलिए, जीवन की साधना को गतिबद्ध करते मय उनकी लेखनी पूर्णतया ईमानदार रह सकी है। उनका दृष्टिकोण स्वस्थ र आधुनिकतम है। उनमें बर्नार्ड शॉ की भाँति सफल, सुन्दर व्यग्य भी है। नकी कृतियों में युग का अनोखा चित्रण है, जादूभरा-सा। वह नव-संस्कृति अधिकारी वाहक हैं। उनके साहित्य में मूक-शोषित मानवता के संगठित सन्तोष की वाणी और शृंखला-खण्डन की वास्तविक प्रेरणा मिलती है। ह शोषितों और दलितों के प्रहरी प्रतिनिधि कलाकार हैं। मानवता के इस न्दा-दीप में हिन्दी को साने गुरु जी मिला।

—'जनवाणी', जुलाई तथा सितम्बर, '५१

श्री मिलिंदजी की गणना निस्संदेह आधुनिक हिन्दी-साहित्य के उन तिनिधियों में की जा सकती है, जिन्होंने नए युग की नई चेतना को प्रभा- नत किया है और जिनकी कृतियाँ देश को नई दिशा की ओर मोड़ने में सफल ई हैं। उन्होंने अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा और विचार-प्रवणता से युग का ाथ दिया है। उनकी साधना की प्रखर ज्योति ने सर्वांगीण जन-जीवन को आलोकित किया है। उनकी अनुभूति मानवता की सच्ची अनुभूति है। उनकी ाणी युगदेवता की वाणी और उनके स्वरों में युग-देवता के स्वरों की कंकार है।

—'जनसत्ता,' दिल्ली, ३१ दिसम्बर' ५२

मिलिंदजी ने सच्चे जन-कवि की भाँति अपने युग की यथार्थ परिस्थिति को सरल और मार्मिक अभिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है। सर्वत्र उनका दृष्टिकोण मानवतावादी और प्रगतिशील है। उनकी दृष्टि की गहराई और सूझ अनोखी है।

—'साहित्यसंदेश', जुलाई '५१ तथा मार्च' ५३

इस युग मे भी श्री मिलिंद अचल, अटल और अभ्रष्ट हैं। ऐसे व्यक्ति म ही सही, पर, ऐसे लोगों पर देश को सदा गर्व रहेगा।

—मोहनसिंह सेंगर

श्री मिलिंद का बहुमूल्य जीवन हम लोगो की शक्ति है।

—(डॉ०) माखनलाल चतुर्वेदी

मिलिंदजी की प्रतिभा बहुमुखी है। उन्होने समस्याओं को राष्ट्रीय दृष्टि-ोण से देखा है और उनपर अपने विचार बड़ी निर्भीकता और सरलता से कट किए हैं। वह बहुत दिनो से साहित्यसेवा करते आ रहे हैं। उन्होने गद्य ौर पद्य दोनो को अलकृत किया है। वह मध्यप्रदेश की विभूतियों में से क हैं।

—(डॉ०) गुलाबराय

मिलिंदजी जो लिखते हैं, बहुत सुन्दर लिखते हैं। उनकी रचनाएँ उत्कृष्ट ोती हैं।

—(आचार्य) नरेन्द्रदेव

मिलिंदजी अभी तरुण बने रह गए। कार्य की शक्ति अभी उनको बनी ।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र

मिलिंदजी के तपोमय मूक जीवन की साधना को जो मूल्य मिलना ाहिए, वह नही मिला। फिर भी, वह दिन दूर नही, जब उनका पूर्ण सम्मान ोगा।

—उदयशंकर भट्ट

मिलिंदजी अँधेरी रात मे मशाल जलाए जा रहे हैं।

—रामवृक्ष बेनीपुरी

मिलिंदजी ने सदैव ही स्वस्थ, सुरुचिपूर्ण सत्साहित्य का निर्माण किया ै, जिसके कारण हिन्दी-साहित्य का भाडार समृद्ध हुआ है।

—अनन्त गोपाल शेवड़े

मिलिंदजी के सर्वस्वत्यागी तपस्वी व्यक्तित्व ने कलम की फ़क़ीरी की है ौर वह कलमधारियो के लिए लडा-खपा है।

—वीरेन्द्रकुमार जैन

मिलिंदजी के नाम से हिन्दी के पाठक अच्छी तरह परिचित होगे। नकी रचनाओं मे देश की राजनीतिक उथलपुथल, ऐतिहासिक घटनाचक्र था नवीन विचारधाराओं के संघर्ष की झाँकी मिलती है। वह अपने

में सफल रहे हैं। उनकी अनुभूति मानवता की अनुभूति तथा युग के प्रतिनिधि कलाकार की जोरदार आवाज है।

—'आज', जून '५१ तथा २५-१०-५३

देश-प्रेम से आरम्भ होकर मिलिंदजी की साधना मानव के प्रेम तक पहुँची है। वह एक सिद्धहस्त कलाकार हैं। उनकी रचनाओं में सरलता है, प्रवाह है, ओज है। उनकी अनुभूति बहुत तीव्र है। इसी कारण उनकी रचनाएँ सच्ची और प्रभावशाली हैं। उनका स्थान साहित्य ही में नहीं, वरन्, इतिहास में भी निश्चित है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

—'विशालभारत', मई' ४६

मिलिंदजी की रचनाओं ने उन्हें पिछले कलाकारों से आगे प्रस्तुत किया है और स्पष्ट किया है कि वह आज भी तरुण हैं। वह आज के युग के साथ भी चल सकते हैं, अपनी उसी प्रतिभा और अमंद गति से। वह प्रगतिशील होने के साथ-साथ कलात्मक भी हैं और विचारप्रवण होने के साथ-साथ सिक्त भी। यही उनकी औरों से विभिन्नता है। वह हिन्दी के सफल नाटककार हैं और उदात्त विचार के कुशल कवि भी। जनजीवन से उनका सीधा सम्पर्क है और अपने देश के सांस्कृतिक अभ्युदय के लिए उनकी आत्मा तड़पती है। किसी भी सत्य से उनकी नजर कतराई नहीं। जीवन के सभी स्वस्थ पहलुओं को उन्होंने कृतित्व में उतारा है। जीवन और सद्गुणों के प्रति उन्होंने जो आस्था प्रकट की है, वह पथप्रदर्शन का कार्य करेगी।

—'नई धारा', सितम्बर '५१, अक्टूबर '५१ तथा अप्रैल '५२

मिलिंदजी आधुनिक हिन्दी कविता के प्रतिनिधि उच्चकोटि के उन साहित्यकारों में से हैं, जिनकी कृतियाँ देश को नई दिशा की ओर मोड़ सकने का तेज रखती हैं। आपने हिन्दी-साहित्य को जो कुछ दिया है, वह प्राण और वास्तविक अनुभूत सत्य से पूरित है। उनकी सभी कृतियाँ अनुपम सौन्दर्य और प्रगतिशील जीवन-दर्शन से पूर्ण हैं। हिन्दी में ऐसी गहन वेदना का स्वर इनेगिने साहित्यकारों की कृतियों में मिलता है। मिलिंदजी ने कोटि-कोटि

श्रमजीवियों की मूक व्यथा को वाणी दी है। हिन्दी-साहित्य के विद्यार्थी और जनता इस साहित्यकार की महत्ता को कभी भुला नहीं सकेंगे।

—'नवयुग', मई '५१

श्री मिलिंदजी ने शोषित-उत्पीड़ित वर्ग के साथ रहकर उनसे हृदय का सम्बन्ध स्थापित किया है। उनकी रचनाओं में केवल बौद्धिक सहानुभूति के स्वर नहीं, रचनात्मक सघर्ष की प्रेरणा है। 'रानी' मई '५१

यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि मिलिंदजी ने कविताओं के माध्यम से मानवता के प्रति, विशेषत: दलित और प्रताड़ित जन के प्रति, पाठक-वर्ग का ध्यान आकर्षित करने का सफल प्रयास किया है। मिलिंदजी ने अपनी काव्य-प्रतिभा को व्योम-विहारिणी न बनने देकर भूमि-चारिणी बनाया है और मानवता के हर्ष-विषाद को सबल अभिव्यक्ति दी है। यह उनकी एक बड़ी सफलता है। —'आजकल', दिल्ली, नवम्बर '५७

मौलिक अनुभूति मिलिंदजी की रचना का प्राण है।

—'कल्पना', हैदराबाद, अगस्त '५३

मिलिंदजी के विचार मौलिक, निर्भीक, सतेज एवं ध्यानाकर्षक हैं।

—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

हिन्दी की सेवा तथा साधना ही में अपने यौवन के बड़े भाग को तपस्वी के रूप में मिलिंदजी ने खपा दिया।

—सत्यदेव विद्यालंकार

मिलिंदजी विद्रोही साधक और क़लम के धनी कलाकार हैं। उनकी क्रांतिकारी रचनाओं का उद्देश्य बद्धमूल रूढ़ियों की सीमा के बाहर क़दम रखना है। वह सर्वहारा, मानवता और जनतंत्र के कलाकार हैं। उनकी पंक्तियाँ हृत्तन्त्री के तारों को झंकृत कर देती हैं। नई धारा के उपकरणों में प्राण ढालने का मिलिंदजी ने श्लाघनीय प्रयत्न किया है।

—'अमृतपत्रिका', प्रयाग, ६-६-५३

'गौतम नन्द' की कुछ समालोचनाओं के अंश

कथानक बहुत ही हृदयस्पर्शी है। यदि इस नाटक का अभिनय किया र, तो दर्शक इसकी कारुणिकता से पसीजे बिना नहीं रह सकते। अभिनय दृष्टि से भी नाटक अभिनन्दनीय है। इसमें प्रगतिशीलता और कलात्मकता ों पूर्ण रूप में हैं। विचारप्रौढ़ता भी है और सरलता भी। हम इसे सफल टकों की श्रेणी में ही रख सकते हैं। इसमें साहित्यिकता का अभाव ीं है। लेखक का प्रयास सर्वतोभावेन श्लाघनीय है।

—आज, वाराणसी, १६ अप्रैल '५३

हिन्दी के सफल नाटककार और कुशल कवि मिलिंदजी का यह तीसरा टक है। मर्मस्पर्शी कथानक है। लेखक ने इसे रंगमंच पर अभिनीत किए ने योग्य बना दिया है। सरल भाषा में प्रभावोत्पादक संवाद नाटककार कुशलता के साक्षी हैं।

—सरस्वती, प्रयाग, मई '५३

'प्रताप-प्रतिज्ञा' से मिलिंदजी ने नाटककार के रूप में जो ख्याति प्राप्त थी, वह नाटकीय भावोत्तेजन और सौष्ठव पर खड़ी हुई थी। इसके रान्त मिलिंदजी में विचार और कला दोनों का सौष्ठव-उदय हुआ, जो मर्पण' और उससे आगे इस प्रस्तुत (गौतम नन्द) नाटक में फलीभूत हुआ । ओज तथा भाषासौष्ठव की दृष्टि से नाटक अभिनन्दनीय है। निस्सन्देह ह अभिनेय भी है।

—साहित्यसन्देश, आगरा, दिसम्बर '५२

नाटक का सामाजिक महत्त्व भी है। मिलिंदजी प्रस्तुत रचना में नाटक-ला की वर्तमान प्रगति के प्रति सचेत हैं। अभिनय की दृष्टि से 'गौतम नन्द' टक की वर्तमान 'टेकनिक' के अधिक निकट है।

—अजन्ता, हैदराबाद, अप्रैल '५३

मिलिन्दजी एक अच्छे कवि और नाटककार हैं। प्रस्तुत पुस्तक उ ऐतिहासिक नाटक है, जिसमें 'गौतम नन्द' का चित्रण किया गया है और बत गया है कि मूलत: और निश्चयत: सामान्य एवं संसारी होते हुए भी एक छो सी घटना से वह किस तरह बुद्धानुयायी बन गए। उनका परिवर्तन अद और महत्त्वपूर्ण है, जिससे बौद्धधर्म एव तथागत के तत्कालीन आकर्षण बोध होता है। नाटक अवश्य मनोरंजक है।

—साप्ताहिक हिन्दुस्तान, दिल्ली, २१ जून '

कवि के रूप में मिलिन्दजी को जो सफलता मिली है, नाटककार के में उससे कुछ अधिक ही मिली है। कथानक की नवीनता के कारण 'गौ नन्द' नाटक कई स्थलो पर अत्यन्त मार्मिक बन पडा है। मिलिन्दजी के ना की सर्वाधिक विशेषता उनकी सरल अभिनेयता मानी जा सकती है। उन सभी नाटक रंगमच की दृष्टि से लिखे हैं।

—जनसत्ता,दिल्ली, ३१ सितम्बर

भारत के नए और पुराने युग मे जो कुछ प्रेरणादायी और ओज रहा है, उसका सफल प्रतिनिधित्व करनेवाले कवि और नाटककार मिलिन्द का यह तीसरा नाटक है। श्री मिलिन्द मे कवि और नाटककार द मे कौन प्रमुख है, यह कहना कठिन है। प्रस्तुत नाटक भी अभिनय की योग के साथ कवित्व और साहित्यिकता से ओतप्रोत है। जन-जीवन में पुले श्री मिलिन्द ने अपने सहज स्वभाव से उपेक्षित गौतम नन्द को इस ना का मुख्य पात्र बनाकर उसकी कीर्ति को आवरण से मुक्ति दे प्रकाश मे दिया है। नाटक काफी सफल है।

—लोकवाणी, जयपुर, ३ मई

इतिहास गौतम नन्द के प्रति मौन है और इसीलिए शिल्पी मिलिन्द उपेक्षा को न सह सके। नाटक करुण रस से ओतप्रोत है। वार्तालाप छ छोटे वाक्यों मे तथा रोचक ढंग से कहा गया है। भाषा का प्रवाह तो दे ही बनता है। ऐसे त्यागोज्ज्वल चरित्र के साथ इन चीजों ने नाटक मे चाँद लगा दिए हैं। लेखक इसके लिए बधाई के पात्र हैं।

वीणा, इन्दौ

ऐतिहासिक कथानक के रूप में पात्रों के कथोपकथन द्वारा वर्तमान यु
की प्रगतिशील विचारधारा यत्रतत्र जिस सुन्दर रूप में नाटककार द्वारा व्यक्त
की गई है, वह लेखक की असाधारण प्रतिभा का द्योतक है। नाटककार
नन्द के त्याग और बलिदान को उचित महत्व देकर इतिहास के एक उपेक्षि
अंग के साथ उचित न्याय किया है। इससे नाटक की सजीवता द्विगुणित ह
हो गई है। प्रांजल भाषा, गम्भीर किन्तु ओजपूर्ण शैली,प्रगतिशील विचारधा
और सजीव एवं प्रभावोत्पादक कथोपकथन नाटक की अपनी विशेषता है
ऐतिहासिक कथानक होते हुए भी उसे मौलिक रूप देने में मिलिन्दजी
विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है। दृश्यों की रचना में अभिनय की
सुगमता का ध्यान रखा गया है। 'गौतम नन्द' के अवतरण से हिन्दी साहित्
में नाटक-रचना के क्षेत्र में एक प्रेरणात्मक प्रवृत्ति का सृजन होगा और व
युगानुकूल एक नवीन दिशा की ओर साहित्यसर्जकों का पथ-प्रदर्शन करेगा
निस्सन्देह साहित्यसंसार में इस कृति का यथोचित स्वागत किया जायगा।

मध्यभारतसन्देश, ग्वालियर, ३ जनवरी '५

श्री मिलिन्दजी की प्रसिद्ध लेखनी से निर्मित इस नाटक के रूप में
साहित्य-जगत् को एक स्वागतयोग्य भेंट प्राप्त हुई है। कथानक ऐतिहासिक है
और उसे रुचिकर बनाने में सफलता प्राप्त हुई है। भाषा एवं भावों के साथ
ही सुस्पष्ट एवं प्रगतिशील दृष्टिकोण का भी पूरा ध्यान रखा जा सका है।
इस रचना को अगर सिनेमा-जगत् अपनाए, तो इससे उसे ठीक उसी प्रकार शान
दार सफलता मिल सकती है, जिस प्रकार श्री क० मा० मुन्शी की कृति पर
निर्मित 'पृथ्वीवल्लभ' को प्राप्त हुई। इस नाटक के लिए लेखक एवं प्रकाशक
वास्तव में बधाई के पात्र हैं।

—प्रभात, ग्वालियर, इन्दौर, १५ दिसम्बर '५२

ऐतिहासिक कथानक के रूप में पात्रों के कथोपकथन द्वारा वर्तमान युग की प्रगतिशील विचारधारा यत्रतत्र जिस सुन्दर रूप में नाटककार द्वारा व्यक्त की गई है, वह लेखक की असाधारण प्रतिभा का द्योतक है। नाटककार ने नन्द के त्याग और बलिदान को उचित महत्त्व देकर इतिहास के एक उपेक्षित अंग के साथ उचित न्याय किया है। इससे नाटक की सजीवता द्विगुणित हो हो गई है। प्रांजल भाषा, गम्भीर किन्तु ओजपूर्ण शैली, प्रगतिशील विचारधारा और सजीव एवं प्रभावोत्पादक कथोपकथन नाटक की अपनी विशेषता है। ऐतिहासिक कथानक होते हुए भी उसे मौलिक रूप देने में मिलिन्दजी ने विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है। दृश्यों की रचना में अभिनय की सुगमता का ध्यान रखा गया है। 'गौतम नन्द' के अवतरण से हिन्दी साहित्य में नाटक-रचना के क्षेत्र में एक प्रेरणात्मक प्रवृत्ति का सृजन होगा और वह युगानुकूल एक नवीन दिशा की ओर साहित्यसर्जकों का पथ-प्रदर्शन करेगा। निस्सन्देह साहित्यसंसार में इस कृति का यथोचित स्वागत किया जायगा।

मध्यभारतसन्देश, ग्वालियर, ३ जनवरी '५३

श्री मिलिन्दजी की प्रसिद्ध लेखनी से निर्मित इस नाटक के रूप में साहित्य-जगत् को एक स्वागतयोग्य भेंट प्राप्त हुई है। कथानक ऐतिहासिक है और उसे रुचिकर बनाने में सफलता प्राप्त हुई है। भाषा एवं भावों के साथ ही सुस्पष्ट एवं प्रगतिशील दृष्टिकोण का भी पूरा ध्यान रखा जा सका है। इस रचना को अगर सिनेमा-जगत् अपनाए, तो इसमें उसे ठीक उसी प्रकार शानदार सफलता मिल सकती है, जिस प्रकार श्री क० मा० मुन्शी की कृति पर निर्मित 'पृथ्वीवल्लभ' को प्राप्त हुई। इस नाटक के लिए लेखक एवं प्रकाशक वास्तव में बधाई के पात्र हैं।

—प्रभात, ग्वालियर, इन्दौर, १५ दिसम्बर '५२